जेएनयू प्रकरण पार्ट – 3

वाम खेमे की खुल गयी पोल

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

जेएनयू प्रकरण पार्ट–3 :

वाम खेमे की खुल गई पोल

संकलनकर्ता

शिवानन्द द्विवेदी

Cover Design & Layout

Vikas Saini

डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी

रिसर्च फाउंडेशन

अनुक्रमणिका

क्र.सं	लेख	पेज न.
01	प्राक्कथन	4
02	गंभीर खतरे की चिंगारी **– आशुतोष मित्रा**	6
03	वामपंथियों के वैचारिक छलावे **– बलवीर पुंज**	8
04	राष्ट्रविरोधी मानसिकता **– मोनिका अरोड़ा**	10
05	जेएनयू का बुनियादी संकट **– शंकर शरण**	12
06	क्या अपनी पार्टी को 'आजादी' नही दिलाएंगे कन्हैया? **– सरोज कुमार**	14
07	झूठ के सहारे राजनीति **– वेंकैया नायडू**	16
08	नौ तारीख पर भी कुछ बोलो कन्हैया? **– पीयूष द्विवेदी**	19
09	हिंसा का इतिहास पुराना है **– डॉ वत्सला**	21
10	दोहरे मानदंडों का वामपंथ **– लोकेन्द्र सिंह**	23
11	उन सिरफिरों का इलाज जरूरी जो जेएनयू की छवि और राष्ट्र की अस्मिता से खेल रहे हैं **– संजय द्विवेदी**	25
12	DEFILING INDIA'S INNER SANCTUARY **– Anirban Ganguly**	29
13	KANHAIYA KUMAR & AZADI **– Aman Lekhi**	33
14	Anti-India incident in JNU part of larger conspiracy **– Dr. Shiv Shakti Bakshi**	35
15	THE ARRIVAL OF A NEW PROLETARIAN MESSIAH **– Sandhya Jain**	37
16	KANHAIYA KUMAR: THE HERO FOR NO REASON **– Rajesh Singh**	40
17	JNU DRAMATISTS MIX UP RAJDROH WITH DESHDROH **– Swapan Dasgupa**	43
18	WHY JNU IS LIKE THIS?JUST TO RECOUNT **– Sandip Mahapatra**	45

प्राक्कथन

अफवाह, हिंसा, झूठ और तानाशाही, ये चारों ही 'वामपंथियों' के विचारों में समाये मूल तत्व हैं। वामपंथ में लोकतंत्र की अवधारणा का कोई स्थान नही है। वामपंथी गिरोह के लड़ाके तभी तक लोकतंत्र और 'अभिव्यक्ति की आजादी' जैसी बातें करते हैं जबतक ये सत्ता में न हों! सत्ता में आने के बाद वे स्टालिन और माओ बन जाते हैं। यह एक प्रमाणिक तथ्य है कि २१वी सदी में जब दुनिया लोकतंत्र को एक बेहतरीन राज्य प्रणाली मानकर स्वीकार कर रही है ऐसे में लोकतंत्र की कसौटी पर वामपंथ पूरी दुनिया से खारिज विचारधारा साबित हुई है। भारत दुनिया का पहला देश है जहाँ वामपंथियों को पचास के दशक में लोकतांत्रिक ढंग से चुनाव लड़कर सरकार चलाने का अवसर मिला। लेकिन इनकी अलगाववादी नीतियों, निरंकुशता एवं भारत विरोधी कृत्यों की वजह से देश की आम जनता ने इनको खारिज कर दिया। पूरे भारत में समस्त वामपंथी दलों की कुल हिस्सेदारी ४ फीसद से भी कम है। जेएनयू के कैम्पस में कुछ प्रोफेसरों, कुछ तथाकथित पत्रकारों एवं चंद मुट्ठीभर वामपंथी कार्यकर्ताओं के भरोसे ये देश में क्रान्ति लाने की मशाल जलाने का नाटकीय ढोंग रचते हैं। यह हमेशा की बात है कि इनका मुख्य आयोजन और प्रयोजन देश विरोधी गतिविधियों को हवा देना होता है। लेकिन जब पकड़े जाते हैं तो दलितों और शोषितों की आवाज उठाने का ढाल बनाकर खुद को बचाने लगते हैं। बुनियादी सवाल है कि अदालत से सशर्त बेल बांड भरकर अंतरिम जमानत पर आये वामपंथी छात्र सन्गठन का जेएनएसयू अध्यक्ष कन्हैया पर आरोप ये है कि वो आतंकी अफजल और मकबूल के समर्थन में आयोजित कार्यक्रम का हिस्सा था। उसी आरोप में वो गिरफ्तार भी हुआ था। अदालत ने प्राथमिक साक्ष्यों के आधार पर उसे फटकार भी लगाई। लेकिन जेल से बाहर आते ही वो गरीबी और जाने किन-किन चीजों से आजादी दिलाने लगा! जबकि कन्हैया को सिर्फ इतना बताना चाहिए कि वो अफजल वाले कार्यक्रम में खालिद के साथ है कि नही है? वो अफजल का विरोध करता है कि नही करता है? वो नक्सलवाद का विरोध करता है कि नहीं करता है? चूँकि जेल से अंतरिम जमानत पर लौट कर जब कन्हैया जश्न मना रहा था उसकी समय सुकमा में सीआरपीएफ के तीन जवान वामपंथियों के नक्सली विंग द्वारा शहीद कर दिए गये थे। यह घटना तभी हुई जब कन्हैया अपने भाषण में सेना वालों को किसान का बेटा बता रहा था और नेताओं पर निशाना साध रहा था। लेकिन कन्हैया से इतना नहीं बताया गया कि २०१० में जब वामपंथ के नक्सली विंग द्वारा ७६ जवानों की हत्या की गयी, वो ७६ जवान किसान के बेटे नही थे क्या? आये दिन जब नक्सली हमारे सिपाहियों को मारते रहते हैं तो क्या वे जवान किसान के बेटे नही होते है क्या? लेकिन कन्हैया इन मुद्दों पर चुप रहा आर वहां जुटी मीडिया भी काउन्टर सवाल करने का अपना कर्तव्य किनारे रखकर उसके लच्छेदार भाषणों का लुत्फ उठाती रही।

खैर, कन्हैया ने अपने भाषण में बाबा साहब भीम राव अम्बेडकर का नाम लिया। नीला-और लाल के गठबंधन का जिक्र किया। जब वो बाबा साहब के बारे में बोल रहा था

तो कोई भी औसत पढ़ा लिखा समझदार व्यक्ति हंसने के अलावा कुछ नही कर सकता था। वामपंथ और बाबा साहब, दो ध्रुव हैं। बाबा साहब हमेशा वामपंथ की कटु आलोचना करते रहे हैं। बाबा साहब ने २५ नवम्बर १९४९ के भाषण में बाबा साहब अम्बेडकर ने कहा था कि वामपंथी इस संविधान को इसलिए नही मानते क्योंकि वे संसदीय लोकतंत्र में विशवास नही करते हैं।'; अम्बेडकर द्वारा कहे गये इस एक वाक्य से स्पष्ट हो जाता है कि बाबा साहब वामपंथ और वामपंथियों को लेकर क्या विचार रखते थे? लेकिन आज जब कन्हैया वामपंथ का गठजोड़ बाबा साहब से करता नजर आ रहा है तो इसे उसकी मजबूरी कहेंगे न कि क्रान्ति की मशाल जलाने का कोई आन्दोलन! कन्हैया ने बाबा साहब का खोल ओढ़कर जिस मनुवाद के खिलाफ आजादी की बात की उसपर वो खुद एक्सपोज होता है। कन्हैया से सवाल है कि वो मनुवाद और ब्राह्मणवाद से भारत को आजाद कराने की बात कर रहा है तो इस समय भारत तो एक ऐसे नेता के शासकीय नेतृत्व में है जो खुद गरीब और पिछड़ा परिवार से आकर लोकतान्त्रिक ढंग से भारत का प्रधानमंत्री बना है! कन्हैया को मनुवाद से आजादी ही दिलानी है तो अपने वामदलों से दिलानी चाहिए! वामपंथी दल (माकपा) पोलित ब्यूरो में पचास सालों में कोई भी दलित शामिल न हो सका है। महिलायें भी शामिल नही हैं। वृंदा करात हैं भी तो वे प्रकाश करात की पत्नी हैं। लिहाजा कन्हैया के पास के पास विकल्प है कि वो अपने विचारधारा वालों से परिवारवाद का प्रश्न भी पूछ सकता है। लेकिन न तो ये सवाल कन्हैया अपने राजनीतिक परिवार वालों से पूछ रहा है और न ही मीडिया कन्हैया से पूछने में रूचि दिखा रही है। हाँ, सेना के जवानो को किसान का बेटा बताने वाला कन्हैया अपने मूल विचारधारा पर जल्दी ही आ गया और यहाँ तक कहा दिया कि सेना के जवान काश्मीर में महिलाओं का बलात्कार करते हैं।

एकबात तो स्पष्ट है कि आज अदालत के डंडे की वजह से भले कन्हैया जैसे लोग थोड़ा संयमित दिखने की असफल कोशिश करें लेकिन उनकी मूल विचारधारा देश के खिलाफ ही है। वे देश को टुकड़े–टुकड़े करने के लिए वैचारिक तौर पर प्रतिबद्ध हैं। उनका उद्देश्य ही देश विरोधी गतिविधियों को हवा देना है।

जेएनयू प्रकरण पार्ट–३ : वाम खेमे की खुल गयी पोल, नाम से इस संकलन को करने का उद्देश्य सिर्फ यही है कि इस विषय पर वामपंथियों के फैलाए अफवाहों के खिलाफ लोगों को बताया जाय और इस विषय पर विभिन्न मंचों पर प्रकाशित सामग्री को एक जगह संकलित किया जाय। इससे पहले हमने 'जेएनयू प्रकरण पर दो और ई–बुकलेट प्रकाशित किये थे जिसे पाठकों की सराहना मिली। इस संकलन में हमने जिन–जिन अखबारों एवं वेबसाइट्स में प्रकाशित लेखों को लिया हैं, उनका आभार व्यक्त करते हैं। जिन लेखकों का लेख लिया है उनका भी आभार व्यक्त करते हैं। डॉ श्यामाप्रसाद मुकर्जी फाउंडेशन की तरफ से सभी का पुनः आभार।

शिवानन्द द्विवेदी
डॉ श्यामा प्रसाद मुकर्जी रिसर्च फाउंडेशन
रिसर्च फेलो

गंभीर खतरे की चिंगारी

● आशुतोष मित्रा

किसी की जमानत पर जीत का जश्न मनाना अजीब लगता है। हम जानते हैं कि अदालत जमानत इसलिए देती है, क्योंकि उसके अनुसार बेल नियम है और जेल अपवाद है। जेएनयू के छात्र नेता कन्हैया कुमार की जमानत के समय न्यायालय ने स्पष्ट चेतावनी दी कि वह राष्ट्रविरोधी कामों में अप्रत्यक्ष रूप से भी शामिल न हो। उसको 'मुख्यधारा' में रहने का मौका दिया गया है। न्यायाधीश के अनुसार अभी पुराने तरीके से इलाज किया जा रहा है। विश्वविद्यालय की तमाम गतिविधियों को न्यायालय ने राष्ट्रविरोधी मानते हुए कहा है कि इंफेक्शन बढ़ने पर अंग काटकर भी इलाज किया जाएगा। मामले की गंभीरता को देखते हुए न्यायालय ने केवल इस छात्र नेता को 'आत्मचिंतन' की सलाह ही नहीं दी, बल्कि जमानतदार को भी यह जिम्मेदारी दी कि वह इस उसकी ऊर्जा को रचनात्मक दिशा में मोड़े। यह अजीब बात है कि जमानत पर आते ही छात्र नेता ने 'आत्मचिंतन' की जगह पर आक्रामकता दिखाई। ९जेएनयू कांड की लीपापोती के लिए एक तर्क यह दिया जा रहा है कि इसके कई नेता पिछड़े क्षेत्र और वर्ग से आते हैं। इस पाखंडी प्रयास को शायद ही कोई गंभीरता से ले। पिछड़े क्षेत्र और वंचित वर्ग की असली पहचान उन सैकड़ों प्रादेशिक विश्वविद्यालयों-कॉलेजों में होती है, जहां छात्रों के पास पहनने के लिए चमड़े की चप्पल नहीं है और जहां हॉस्टलों को होटलों की तरह महंगा करके छात्रों को दड़बों में रहने के लिए विवश कर दिया गया है। इस मामले में जेएनयू की यह स्थिति है कि दिल्ली में शानदार आवास के बाद भी नियम तोड़कर कम्युनिस्ट सांसद की पुत्री आवास की सुविधाएं ले रही हैं। हालांकि उसमें भी देश को तोड़ने का तर्क दिया जाता है, लेकिन कुल मिलाकर सार्वजनिक रूप से भारतीय राज्य, संविधान और यहां तक कि गांधी को भी स्वीकार किया जा रहा है। दिखावे के लिए ही सही, यह अच्छी बात है, क्योंकि इस विचारधारा ने गांधी तो क्या, अपनी ही सहयोगी पार्टी फारवर्ड ब्लाक के संस्थापक सुभाष को लंबे समय तक गालियां दी थीं। इस नई रणनीति में कुछ छात्र नेता मीडिया के सामने संसदीय और सौम्य चेहरा पेश करेंगे, लेकिन वे नेता भी ९ फरवरी कांड के माओवादियों और मुस्लिम कट्टरपंथियों का बचाव करते रहेंगे। यह भी ध्यान देने वाली बात है कि इस पूरे वर्ग के भाषणों और पुस्तकों में केवल भारत की भिन्नता का ही जिक्र होगा। कहीं भी भारत की एकता का जिक्र नहीं होगा। भारत में हर जगह पर अलगाव देखने की उनकी यही आदत आगे अलगाववाद और फिर आतंकवाद का आधार बनाती है।१उच्च न्यायालय ने साफ कहा है कि ९ फरवरी का मामला देशद्रोह की बड़ी साजिश है जिसको कुचलने के लिए कठोर कदम उठाए जाएंगे। अभी तक कम्युनिस्ट ही नहीं, कांग्रेसी भी इस कांड की आलोचना में एक-दो औपचारिक वाक्य बोलने के बाद फिर घंटों हजारों तर्कों से, घुमा-फिरा करके विश्वविद्यालय की स्वायत्तता, अभिव्यक्ति की आजादी और यहां तक कि अफजल की फांसी तक का सवाल उठाने

लगते थे। राहुल गांधी इसी सोच के कारण जेएनयू गए और चिदंबरम ने अफजल की फांसी पर सवाल उठाया। उच्च न्यायालय ने इन सबको पूरे देश के सामने कठघरे में खड़ा कर दिया है। दुरूख की बात है कि बंगाल में कम्युनिस्टों का साथ लेने के लालच में उस कांग्रेस ने यह काम किया, जिसने इन्हीं अलगाववादियों से लड़ते हुए अपने दो शीर्ष नेता-प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री बेअंत सिंह और छत्तीसगढ़ में विद्याचरण शुक्ल, महेंद्र कर्मा के साथ लगभग अपने पूरे शीर्ष प्रादेशिक नेतृत्व का बलिदान किया है। जिस पार्टी ने पूरी दुनिया के सिखों-हिदुओं के आस्था के केंद्र स्वर्ण मंदिर पर सैनिक कार्रवाई करने में संकोच नहीं किया, उसको शत-प्रतिशत सरकारी पैसे पर चलने वाले जेएनयू में पुलिस के न घुसने पर भी देश में फासीवाद का संकट दिखने लगा। दिल्ली उच्च न्यायालय ने अपनी बेबाकी से जेएनयू कांड के विध्वंसक निहितार्थो को बेनकाब कर दिया है। यह साफ हो गया है कि वह राजद्रोह और उससे भी बढ़कर देशद्रोह था। माओवादी, इस्लामी कट्टरपंथी दशकों से जेएनयू जैसे टिगर की तैयारी कर रहे थे, जिसके जरिए भारत के कई ठिकानों से एक साथ खूनी बगावत शुरू की जा सके। माओवादी जेएनयू-हैदराबाद जैसी जगहों पर अपना 'मुक्त क्षेत्र' बना ही चुके हैं। देश के कई ठिकानों से इस्लामी आतंकियों की गिरफ्तारी हो चुकी है। दूसरी ओर माओवादियों ने पांच-छह प्रदेशों के एक विशाल क्षेत्र पर अपना दबदबा बना लिया है। इन दोनों को भरोसा है कि पूरे देश में बगावत का बारूद भरा जा चुका है। अब जेएनयू जैसी जगहों से चिंगारी भड़काने की जरूरत है। राष्ट्रीय राजधानी होने के नाते इस टिगर के इशारे को पूरे देशभर के आतंकी आसानी से समझ लेते। यह कोशिश भारत 'की' आजादी की नहीं थी, जैसा जमानत पर रिहा हुआ छात्र नेता कह रहा है। यह कोशिश भारत 'से' आजादी तक भी सीमित नहीं थी। वे 'भारत की बर्बादी' तक 'जंग जारी रखने' की कसम खा चुके हैं। न्यायालय ने सही कहा है कि यह इंफेक्शन महामारी का रूप ले सकता है। शायद यह महामारी का रूप ले चुका है। कश्मीर में ही नहीं, मुंबई में भी एक आतंकी की शवयात्र में हजारों लोग शामिल होते हैं। इसके बाद भी एक आतंकी को फांसी देने पर हमारे बुद्धिजीवियों को देश में फासीवाद का खतरा दिखने लगता है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने हमारी आंख खोलने की कोशिश की है। इसके बाद भी तटस्थ रहना उचित नहीं होगा।

दैनिक जागरण में प्रकाशित

वामपंथियों के वैचारिक छलावे

• बलवीर पुंज

राष्ट्रद्रोह के आरोप में सशर्त जमानत पर रिहा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र नेता कन्हैया कुमार ने एक बार फिर परिसर में जैसे व्यवस्था विद्रोही तेवर दिखाए उसे सुनकर वामपंथी गदगद हैं तो सेक्युलरिस्ट उसमें जननायक की छवि देख रहे हैं। मीडिया के बड़े वर्ग में उसे इस तरह कवरेज मिला, मानो गरीबों-किसानों के लिए एक नए मसीहा का अवतरण हो गया हो। कन्हैया ने ९ फरवरी के आयोजन में आतंकी अफजल गुरु के समर्थन में नारे लगाए थे या नहीं, इस पर अदालत को फैसला करना है, किंतु इसमें कोई विवाद नहीं कि वह आयोजन के समय वहां मौजूद था। जेल से रिहा होने के बाद कन्हैया ने रंग तो बदला है, पर वर्षो से जेहन में पैबस्त वर्ग संघर्ष और भारत विरोधी मानसिकता कायम है। १कन्हैया कुमार जिस वैचारिक अधिष्ठान से जुड़े हैं, जिस दर्शन से प्रतिबद्ध हैं उसने तिरंगे के स्वाभिमान की कभी रक्षा नहीं की। कम्युनिस्टों की पूरे विश्व में जो कार्यपद्धति है वह तथाकथित जनक्रांति के नाम पर लोकतांत्रिक मूल्यों की हत्या का साक्षी है। विडंबना यह है कि यह जनक्रांति लोकतांत्रिक आवरण में तो छेड़ी जाती है, किंतु शीघ्र ही उसका स्थान अधिनायकवाद ले लेता है। माओ ने 'सांस्कृतिक क्रांति' के नाम पर स्वतंत्र विचारधारा और जनतंत्र का इसी तरह दमन किया। अपने राजनीतिक विरोधियों को खत्म करने के मामले में जहां स्टालिन ने हिटलर को पीछे छोड़ दिया, वहीं माओ राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों की हत्या में इन दोनों से काफी आगे था। माओ के अनुयायी केवल केंद्रीय सत्ता पर विश्वास रखते हैं और पार्टी की विचारधारा व नेतृत्व का विरोध करने वालों का हिंसात्मक दमन ही उनकी नीति है। सभ्य समाज के प्रति युद्ध को वे 'जनयुद्ध' की संज्ञा देते हैं। अफजल ने सभ्य समाज के खिलाफ ही तो हथियार उठाया था। कन्हैया जैसे कामरेड यदि उसे जननायक मानते हैं तो आश्चर्य कैसा? कम्युनिस्टों ने लोकतांत्रिक आवरण में ही व्यवस्था तंत्र को आघात पहुंचाने के साथ सामाजिक ताने-बाने को भी तोड़ने का कुचक्र रचा है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि नक्सलवादी हों या पूर्वोत्तर के अलगाववादी, कम्युनिस्ट उनके संरक्षण में खड़े नजर आते हैं। १तीस के दशक में हिंसा की घटनाओं के साथ कम्युनिस्ट देशभर में आंदोलन खड़ा करने में क्षणिक रूप से सफल हुए थे। किंतु कांग्रेस प्रमुख राजनीतिक पार्टी बनी रही और गांधीजी इसके मार्गदर्शक थे। मजदूर संघों में भी राष्ट्रवादी ताकतों का वर्चस्व रहा। चालीस के दशक में उन्हें सुनहरा अवसर मिला, लेकिन वे ब्रितानियों के संग हो लिए। बड़े पैमाने पर राष्ट्रवादी नेता जेल में कैद थे। इससे कम्युनिस्टों को भारतीय राजनीति खासकर मजदूर संघों में सेंधमारी करने का उपयुक्त अवसर मिला। कम्युनिस्टों ने तब ब्रिटिश हुकूमत को लिखित रूप से अपना सहयोग देना स्वीकार किया था। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उन्हें मास्को से दिशा-निर्देश दिए गए और उन्होंने इसे सिर झुकाकर स्वीकार तो किया ही, आंदोलन की शक्ति मंद करने

में कोई कसर बाकी नहीं रखी। अपनी आत्मकथा-'ए ट्रेवलर एंड दि रोड-द जर्नी ऑफ एन इंडियन कम्युनिस्ट' में कामरेड मोहित सेन ने यह स्वीकार किया है कि 'इस बात में कोई दो राय नहीं कि सीपीआइ ने साम्यवाद के कारण भारतीय स्वतंत्रता के लिए चल रही राष्ट्र की मुख्यधारा के विपरीत जाकर सोवियत संघ को अधिक प्राथमिकता दी। चीन और यूगोस्लाव के अपवाद को छोड़कर सीपीआइ ने यह स्वाभाविक स्वामिभक्ति अधिकांश साम्यवादी दलों के साथ बांटी, जिसमें देश को दूसरे दर्जे पर रखा गया।' कम्युनिस्टों ने जिन्ना की पाकिस्तान की मांग का समर्थन कर देश के बंटवारे के लिए बौद्धिक जमीन तैयार की। 'इन ऑल दीज इयर्स' नामक अपने जीवन परिचय में कम्युनिस्ट राज थापर ने लिखा है, आज तक मैं यह समझ नहीं पा रही हूं कि अलग पाकिस्तान के विचार का कम्युनिस्टों ने समर्थन क्यों किया, इसके पीछे उनका निहित स्वार्थ क्या था? वामपंथियों के विकृत सामाजिक दर्शन के कारण जहां हिंदू समाज को जातियों में विभाजित करने का कुप्रयास किया गया, वहीं मजहब के नाम पर मुसलमानों के कट्टरपंथी वर्ग को पोषित किया गया, जिसकी तार्किक परिणति भारत के रक्तरंजित विभाजन व अलग पाकिस्तान में हुई। १इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि बीसवीं सदी के भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण क्षणों में कम्युनिस्टों ने भारी गलतियां कीं। १५ अगस्त, १९४७ को आजादी मिल जाने के बावजूद भारत के स्वतंत्र अस्तित्व को नकारा, भारत-चीन युद्ध के दौरान भारतीय राज्यों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह छेड़ा, १९७५ में आपातकाल और प्रेस पर प्रतिबंध को अपना समर्थन दिया। कम्युनिस्ट गरीब और वंचितों का हितैषी होने का दावा करते हैं। अपने चिंतन से उन्होंने पश्चिम बंगाल और केरल का जो हाल किया है, वह जगजाहिर है। आज कामरेड कन्हैया के तेवरों को देख मार्क्सवादी उसे पश्चिम बंगाल में चुनाव प्रचारक बनाना चाहते हैं। किंतु कटु सत्य तो यह है कि कम्युनिस्टों को गरीब से नहीं, गरीबी से लगाव है, ताकि वे अपने वैचारिक छलावों से उन्हें मोहित कर अपनी दुकानदारी चलाते रहें। कार्ल मार्क्स के शिष्य लेनिन को उनके ही देश में गहरे दफन कर दिया गया है, लेकिन हमारे कामरेड अभी भी उस सड़-गल गई विचारधारा पर प्रयोग कर देश को खुशहाली व उन्नति के मार्ग पर ले जाने का दावा करते हैं। एक शैक्षणिक संस्थान होने के बावजूद जेएनयू का उस विषाक्त दर्शन का प्रयोगशाला बनना हास्यास्पद नहीं तो और क्या है?

दैनिक जागरण में प्रकाशित

राष्ट्रविरोधी मानसिकता

● मोनिका अरोड़ा

रंग हरा हरी सिंह नाल्वे से, रंग लाल है लाल बहादुर से, रंग बना बसंती भगत सिंह, रंग अमन का वीर जवान से..। कन्हैया कुमार को जमानत देने के दौरान दिल्ली हाईकोर्ट ने उपकार फिल्म के एक गाने की इन पंक्तियों को उद्धृत करते हुए सवाल किया कि जेएनयू से शांति के रंगों को भंग क्यों किया जा रहा है? कोर्ट ने आगे कहा कि इस प्रश्न का जवाब वहां के छात्रों, शिक्षकों और विश्वविद्यालय प्रबंधन से मांगने की जरूरत है। कोर्ट ने यह भी कहा कि जेएनयू में जिस तरह से देशविरोधी नारे लगे उससे शहीदों के परिजनों को निराशा हुई होगी। ये छात्र स्वतंत्र रूप से इसलिए नारे लगा पा रहे हैं, क्योंकि सेना के जवान और अर्धसैनिक बल देश की सीमाओं की सुरक्षा कर रहे हैं। जेएनयू में हेट इंडिया ब्रिगेड लंबे समय से देशविरोधी गतिविधियां चलाती रही है। वर्ष २००० में वहां वामपंथी छात्र संगठनों द्वारा भारत-पाक मुशायरे का आयोजन किया गया था। वहां आए शायरों ने भारत और भारतीय सेना को कोसना आरंभ कर दिया। छुट्टी पर आए सेना के दो जवान वहां दर्शक दीर्घा में मौजूद थे, उन्होंने जब उनका विरोध किया तो वहां की भीड़ ने उन पर पलटवार किया। जवानों ने अपना पहचानपत्र दिखाते हुए कहा कि वे सैनिक हैं। इसके बावजूद उन्हें बेरहमी से मारा पीटा गया। साल २०१० में डेमोक्रेटिक स्टूडेंट यूनियन (डीएसयू) और ऑल इंडिया स्टूडेंट एसोसिएशन (एआइएसस) ने छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा में सीआरपीएफ के ७६ जवानों की नक्सलियों द्वारा निर्मम हत्या पर जश्न मनाया था। इसके अलावा वहां नक्सलियों के समर्थन में नारे भी लगे। २२ अक्टूबर, २०१० को नई दिल्ली में 'आजादी द ओन्ली वे' शीर्षक से एक सेमिनार का आयोजन हुआ था, जिसमें अरुंधती रॉय, सईद अली शाह गिलानी, खालिस्तानी तथा नगा अलगाववादी नेता शामिल हुए थे। वहां उन्होंने कश्मीर की आजादी की मांग की। डीएसयू ने पूरे जेएनयू कैंपस में पोस्टर लगाए और प्रसिद्ध गंगा ढाबे से छात्रों को बसों में भर कर इस कार्यक्रम में शामिल होने के लिए ले जाया गया। हर साल जब पूरा देश नवरात्र में मां दुर्गा की पूजा करता है तब कुछ देशविरोधी छात्र और प्रोफेसर राक्षस महिषासुर की पूजा करते हैं। वे मां दुर्गा के संदर्भ में कुतर्क करते हैं कि उन्होंने अश्वेत निम्न जाति के महिषासुर की हत्या की। साल दर साल यह हेट इंडिया ब्रिगेड विभिन्न मुद्दों पर बोलने के लिए कश्मीरी अलगाववादियों को आमंत्रित करती रही और पूवरेत्तर तथा कश्मीरी अतिवादियों-चरमपंथियों के समर्थन में कार्यक्रम आयोजन करती रही है। वर्ष २०१५ में व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए जेएनयू के हॉस्टल में पोर्न वीडियो बनाया गया था। इसके बाद विश्वविद्यालय ने एक सकरुलर जारी कर लड़कों के हॉस्टल में लड़कियों के प्रवेश पर रोक लगा दी। इस आदेश का भारी विरोध हुआ। उनके दबाव में आकर विश्वविद्यालय प्रशासन को अपना आदेश वापस लेना पड़ा। यह हेट इंडिया ब्रिगेड भारत के संविधान, इसकी एकता, अखंडता, संप्रभुता का विरोध करती रही है। साथ ही कश्मीर को भारत से अलग करने की मांग करती रही है। जब सुरक्षा एजेंसियां उन पर कार्रवाई करती हैं तब इससे जुड़े लोग हो हल्ला मचाते हैं, सुरक्षा

बलों और सेना को चुनौती देते हैं। ७जेएनयू अतिवामपंथियों, माओवादियों, नक्सलियों का गढ़ बन गया है। किसी में उन्हें हाथ लगाने की हिम्मत नहीं थी। मौजूदा सरकार ने इस चुनौती को स्वीकार किया है और कानून के तहत इस मामले से निपट रही है। इस हेट इंडिया ब्रिगेड के लिए नौ फरवरी, २०१६ भी एक सामान्य दिन की तरह था। पूरे जेएनयू कैंपस में पोस्टर चिपकाए गए और छात्रों को अफजल गुरु की कथित न्यायिक हत्या और कश्मीर पर भारत के अधिकार के खिलाफ विरोध मार्च में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया। इसके बाद देश ने देखा कि वहां किस तरह के देशविरोधी नारे लगे। ७इस घटना के सामने आने के बाद देश में अभिव्यक्ति की आजादी और राजद्रोह के कानून पर बहस छिड़ गई। अभिव्यक्ति की आजादी की क्या सीमाएं हैं और राजद्रोह क्या होता है? इसके बारे में आम आदमी भी अच्छी तरह बता सकता है, लेकिन मीडिया और बुद्धिजीवियों के एक धड़े ने भ्रम फैलाने का काम किया। कुछ मीडिया घरानों के साथ-साथ पूर्ववर्ती सरकारों के शासनकाल में मलाई खाते रहे बुद्धिजीवियों के एक समूह का अपना एजेंडा है। आइपीसी की धारा १२४(ए) कहती है कि कोई भी आदमी यदि विधि द्वारा स्थापित सरकार के खिलाफ लिखकर, बोलकर, संकेत देकर या फिर अभिव्यक्ति के जरिये विद्रोह करता है या फिर नफरत फैलाता है या ऐसी कोशिश करता है तो उसे अधिकतम उम्रकैद या तीन वर्ष या जुर्माने की सजा हो सकती है। ७सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में भी राजद्रोह की व्याख्या की है। १९६२ में केदारनाथ बनाम बिहार राज्य के केस में सुप्रीम कोर्ट की सात जजों की बेंच ने एक ऐतिहासिक फैसला दिया। इसके अनुसार वैसा कृत्य जिसमें विधि द्वारा स्थापित सरकार के खिलाफ अव्यवस्था फैलाने या फिर कानून व व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा करने या फिर हिंसा को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति या फिर मंशा हो तो उसे राजद्रोह माना जाएगा। इसके अलावा हार्दिक पटेल बनाम गुजरात राज्य के केस में सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि यदि कोई व्यक्ति अपने भाषण या कथन के जरिए विधि द्वारा स्थापित सरकार के खिलाफ हिंसा फैलाने का आह्वान करता है तब उसे राजद्रोह माना जाएगा। इस प्रकार पाकिस्तान जिंदाबाद या हद्विस्तान मुर्दाबाद का नारा शायद राजद्रोह की श्रेणी में न आए, लेकिन भारत तेरे टुकड़े होंगे का नारा निश्चित रूप से राजद्रोह है। यह राजद्रोह ही नहीं, बल्कि राष्ट्रद्रोह है। अनुच्छेद १९ (१) (अ) अभिव्यक्ति की आजादी की गारंटी देता है, लेकिन इस पर युक्तियुक्त प्रतिबंध भी लगाया गया है। व्यक्ति की अभिव्यक्ति की सीमा वहीं तक है जहां तक देश की एकता, अखंडता, राज्य की संप्रभुता, लोक व्यवस्था आदि को खतरा न पहुंचे। ७इस प्रकार जेएनयू की घटना सिर्फ विश्वविद्यालय स्तर पर अनुशासनहीनता का मुद्दा नहीं है। कन्हैया कुमार के जमानत आदेश में कहा गया है कि दूषित मानसिकता से ग्रसित कुछ छात्र देश के लिए खतरा बन जाएं उससे पहले उन्हें नियंत्रित करने की जरूरत है। संक्रमण जब शरीर के किसी अंग तक सीमित होता है तब एंटी-बायोटिक दवा दी जाती है। यदि वह काम नहीं करती है तब दूसरे इलाज के रूप में ऑपरेशन की जरूरत पड़ती है, लेकिन जब लगे कि ऑपरेशन से भी संक्रमण ठीक नहीं होगा तो अंतिम इलाज के रूप में उस अंग को ही काटना पड़ता है। छात्रों के इस छोटे समूह को लगा संक्रमण कोई छोटा मोटा नहीं है। उनके मन में सालों से जहर भरा गया है, अब वह कैंसर के समान हो गया है। यदि इसका अभी ऑपरेशन कर इलाज नहीं किया गया तो यह बीमारी पूरे देश को बर्बाद कर देगी।

दैनिक जागरण में प्रकाशित

जेएनयू का बुनियादी संकट

● शंकर शरण

जेएनयू के कई छात्रों और उनकी पैरोकारी कर रहे प्रोफेसरों की बातें सुनकर जॉर्ज आरवेल की पुस्तक 'एनिमल फार्म' का स्मरण होता है। उस अद्भुत पुस्तक ने दिखाया कि कम्युनिस्ट रूस में समानता, स्वतंत्रता, न्याय, शांति, युद्ध आदि धारणाओं की क्या दुर्गति हुई थी। अतः संयोग नहीं है कि जेएनयू के ज्यादातर छात्र, प्रोफेसर वही कर रहे हैं, क्योंकि वहां भी ठीक उसी कम्युनिस्ट विचारधारा का दबदबा रहा है। जेएनयू के एक बड़े हिस्से में न्याय, स्वतंत्रता, राष्ट्रवाद आदि की विचित्र समझ उसे वैसा ही 'पशु-बाड़ा' या मानव-बाड़े सा दिखाती है, जहां के लोगों को दुनिया का वास्तविक ज्ञान नहीं है। उन्हें हर चीज की एक बनी-बनाई समझ है, जो भारत-विरोधी या हिंदू-विरोधी है। इसीलिए वे सहजता से, यहां तक कि गर्व से अफजल, याकूब मेमन या अजमल कसाब का उल्लेख करते हैं। यही कारण है कि अभी पूरे देश ने महसूस किया है कि जेएनयू मानो भारत से अंदर कोई अलग देश हो। हमारे सांसदों को इस पर ध्यान देना चाहिए कि वे क्या पढ़ाने के लिए जेएनयू को सर्वाधिक उदारता से धन देते रहे हैं? वहां जो मानसिकता बनी है वह लंबे समय की व्यवस्थित विकृति का नतीजा है। यह वहां पूरी सामाजिक-मानविकी शिक्षा के राजनीतिकरण का मामला है। वहां से आ रहे अधिकांश विचित्र बयान इतने सहज विश्वास से दिए जा रहे हैं कि सामान्य पुलिसवाले भी हैरत में हैं कि आखिर जेएनयू में कैसे लोग हैं? देश की जनता, देशहित और सामान्य बुद्धि से जेएनयू की प्रभावी बौद्धिकता का साफ विलगाव ही मूल चिंता का विषय होना चाहिए। स्पष्टतः वहां सामाजिक-राजनीतिक शब्दावली का विचित्र अर्थ कर लिया गया है। ऐसा अर्थ जो न केवल मानक राजनीति शास्त्र के विपरीत है, बल्कि अपने देश व समाज के प्रति लापरवाह, यहां तक कि विरुद्ध भी है। ७जेएनयू में लंबे समय से वामपंथी वातावरण का स्नोत यह है कि इतिहास, राजनीति, साहित्य जैसे विषयों का राजनीतिकरण कर डाला गया। यह वहां सामाजिक विषयों के सिलेबस, पाठ्य-सूची, गोष्ठी-सेमिनार के विषय, आदि हरेक चीज से परखा जा सकता है। कम्युनिस्ट रूस के अनुकरण में जेएनयू में यही किया गया है। इसीलिए देशद्रोही और आतंकवाद समर्थक वक्तव्यों को सहज माना जाता है। यह वैचारिक नशा है, जो जनता से पूर्ण विलग होकर भी अपने रेडिकल मत को 'जनवाद' कहता है। जेएनयू में सामाजिक विषयों की शिक्षा नहीं, मतवादीकरण होता रहा है। यानी किसी मत या विचारधारा विशेष में आग्रही बनाने का कार्य। मतवादीकरण के कुछ तरीके हैं-किसी का भावनात्मक दोहन, उसमें अपराध-बोध भरना, बार-बार निंदा करना, दूसरों का छिद्रान्वेषण, लज्जित करना, दोषारोपण करना, पीड़ित होने का ढोंग करना, तथ्यों पर छल करना आदि। सामाजिक शिक्षा, विशेषतः इतिहास, राजनीति तथा साहित्य में नई, जनवादी, आधुनिक 'व्याख्या' के नाम पर यह सब

सरलता से होता है। यह शिक्षा की भावना के विरुद्ध है। जेएनयू में यही हुआ है। वहां के मार्क्सवादी इतिहासकारों की पुस्तक-पुस्तिकाएं, भाषण, एक्टिविज्म आदि इसके सटीक उदाहरण हैं। इसीलिए वहां अनेक छात्र अपनी मतवादी या मूर्खतापूर्ण बातों को विशिष्ट ज्ञान समझते हैं। शिक्षा है ज्ञान, विवेक तथा प्रमाणिक जानकारी होना, न कि कोई बना-बनाया निष्कर्ष या मत दोहराना, चाहे सुनने में वे कितने ही अनोखे क्यों न लगें। मतवाद प्रभावित व्यक्ति उस मत की समीक्षा करने के लिए राजी नहीं होता। इसे जेएनयू में साफ देखा जा सकता है, जब बड़ी संख्या में छात्र और प्रोफेसर बड़े विश्वास से वहां के प्रशासन को ही नहीं, पुलिस एवं न्यायालय को भी निर्देश देने का अंदाज दिखाते हैं। वहां समाज विज्ञान शिक्षा ने विद्वान के बदले दलीय कार्यकर्ता तैयार किए हैं। उन्हीं कई को प्रोफेसर बना देने से सच्चाई छिप नहीं सकती। वस्तुतः यह सब वहां इतने खुले रूप में होता रहा है कि बहुतों को विश्वास नहीं होगा कि ऐसा भी हो सकता है। पूरी शिक्षा को देश-विरोधी पार्टी प्रोपेगंडा में बदल दिया गया है। इस बिंदु पर सारे रेडिकलों के प्रिय नोआम चोमस्की के विचार भी दर्शनीय हैं, 'मतवादीकरण की प्रक्रिया और गतिविधि को ठीक से समझना सबसे जरूरी कर्तव्य है। तानाशाही शासन वाले देशों में इसे देख पाना बड़ा आसान है, किंतु 'स्वतंत्रता में मगजधुलाई' की व्यवस्था को देख पाना बहुत कठिन है जिसमें हम मजबूर किए जाते हैं और जिसके कई बार हम अनजाने उपादान बन जाते हैं।' चोमस्की ने यह बात लोकतांत्रिक सरकारों के लिए कही थी, किंतु यह बात दोधारी तलवार है। यह इंदिरा गांधी जैसी सरकार पर सही है, तो जेएनयू जैसे स्वायत्त अकादमिक टापू पर भी, जहां विविध कम्युनिस्ट ग्रुप ने अपने अड्डे बना लिए हैं। ७जेएनयू की सामाजिक शिक्षा का राजनीतिकरण मूलतः उस समाजवादी भ्रम की ही निष्पत्ति है जो स्वतंत्र भारत में सरकारी स्वीकृति से आरंभ होकर धीरे-धीरे मीठे विष की तरह शिक्षा, विमर्श और बौद्धिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के पोर-पोर में व्याप गया है। श्रीअरविंद ने कहा था कि किसी भी महान देश का पतन हमेशा तीन गुणों के क्षरण से आरंभ होता है। यह तीन गुण हैं- विवेकपूर्ण विचार करने की क्षमता, तुलना व विभेद करने की क्षमता तथा अभिव्यक्ति की क्षमता। हमें जेएनयू के हाल से अपने देश की स्थिति का आकलन कर लेना चाहिए। कम से कम हमें सोवियत अनुभव से भी सीखना चाहिए कि सात दशकों तक वहां कम्युनिस्ट मतवादीकरण को ही 'समाज विज्ञान शिक्षा' मानने के क्या-क्या दुष्परिणाम हुए?

क्या अपनी पार्टी को 'आजादी' नही दिलाएंगे कन्हैया?

• सरोज कुमार

बीते ३ मार्च की रात जेल से रिहा होने के बाद जेएनयू छात्रसंघ अध्यक्ष कन्हैया ने जोरदार भाषण दिया। देश को भाषण बहुत पसंद है, लोगों को नरेंद्र मोदी का भाषण भी काफी पसंद आया था। कन्हैया का भाषण न केवल टीवी चौनलों पर चला बल्कि अगले दिन अखबारों की लीड खबरों में रहा। देश में अधिकतर लोगों को एक नायक चाहिए होता है और सोशल मीडिया पर गौर करें तो वे कन्हैया को इसके बाद कुछ इसी तरह पेश कर रहे हैं। मौजूदा परिदृश्य में संघ, बीजेपी और असल में मोदी के खिलाफ विपक्ष को तथा कथित प्रगतिशील लोगों को एक चेहरा चाहिए और भाषण के बाद वे कन्हैया को कुछ इसी तरह जता रहे हैं। लेकिन कन्हैया जिस संघवाद, ब्राह्मणवाद, जातिवाद, मनुवाद से आजादी की बात कर रहे हैं क्या वे खुद अपने छात्र संगठन ऑल इंडिया स्टुडेंट्स फेडरेशन (एआइएसएफ) और पार्टी सीपीआई को आईना दिखाएंगे। क्या वे खुद अपनी संगठन और पार्टी को इन चीजों से आजाद कराएंगे? कायदे से तो उन्हें पहले यहीं करना चाहिए, देश तो इन बुराइयों से पहले ही लड़ रहा है।

जिन लोगों ने बिहार में एआइएसएफ और सीपीआई को नजदीक से देखा है या देख रहे हैं, वे इस बात को अच्छी तरह समझ रहे होंगे। इन दोनों संगठनों के नेतृत्व में दलित न के बराबर हैं। बिहार में सीपीआई के मुखिया यानी राज्य सचिव सत्य नारायण सिंह भूमिहार हैं। इससे पहले भी इस पद पर भूमिहार समुदाय के राजेंद्र सिंह थे। पार्टी से जुड़े एक सूत्र के मुताबिक, इसकी राज्य कार्यकारिणी में ३१ लोग हैं, जिनमें एकमात्र दलित जानकी पासवान हैं। इस कार्यकारिणी में तकरीबन ११ भूमिहार, ५ राजपूत, ४ ब्राह्मण, ३ कायस्थ और आधा दर्जन पिछड़े हैं। इनमें महिला भी सिर्फ एक हैं। पिछले साल इस कार्यकारिणी में से करीब एक दर्जन लोगों को हटाया गया था। हटाए जाने वालों में अधिकतर ओबीसी और एक आदिवासी थे। पार्टी ने इसको सालना प्रक्रिया बताया पर सवाल उठता है कि अधिकतर पिछड़े समुदाय के लोगों को क्यों हटाया गया? सच पूछा जाए तो पार्टी अपने सवर्णवाद के लिए प्रदेश में बदनाम है। राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो पार्टी के महासचिव सुधाकर रेड्डी और डिप्टी महासचिव गुरुदास दासगुप्ता हैं। हालांकि पार्टी के राष्ट्रीय सचिव डी। राजा दलित हैं और वे हिन्दी प्रदेश के रहने वाले नहीं बल्कि दक्षिण भारत के तमिलनाडु के हैं।

ठीक इसी तरह एआइएसएफ की बात करें तो इसके राज्य सचिव सुशील कुमार (यादव) हैं तो प्रदेश अध्यक्ष परवेज आलम (मुस्लिम) हैं। राष्ट्रीय स्तर पर बिहार के विश्वजीत कुमार

(भूमिहार) एआइएसएफ के महासचिव हैं तो राष्ट्रीय सचिव मो। कादिर। जाहिर है, कन्हैया के संगठन और पार्टी के नेतृत्व की सामाजिक संरचना को देखें तो दलित नदारद हैं। तो क्या इन्हें दलितों की राजनीति तो करनी है पर उन्हें बस पैदल और शहीद होने वाले सिपाही बना कर? जाहिर है, इन्हीं वजहों से दलितों-वंचितों की आवाज उठाने का दावा करने वाली पार्टी बिहार विधानसभा चुनाव में जीरों पर सिमट गई। वह पहले ही बिहार या अन्य हिन्दी प्रदेशों में आधार खो चुकी है और मायावती-लालू-नीतीश जैसे नेताओं में वंचित समुदाय अपना अक्स देखते हैं। ध्यान देने वाली बात यह भी है कि पिछले बिहार विधानसभा चुनाव में सीपीआई के सिर्फ तीन सवर्ण उम्मीदवार १०,००० से ज्यादा वोट हासिल कर पाए थे, जबकि पार्टी के पिछड़े समुदाय के आठ उम्मीदवारों ने १०,००० से ज्यादा वोट हासिल किया था। इससे जाहिर है, सवर्ण पार्टी नेताओं के मुकाबले ज्यादा जनाधार पिछड़े समुदाय के नेताओं का है।

एक बात और कि करीब दो साल पहले पटना के आंबेडकर छात्रवास (दलित छात्रावासा) पर कथित तौर पर बगल के सैदपुर हॉस्टल के भूमिहार छात्रों ने हमला कर दिया था और जातिसूचक टिप्पणियों के साथ दलित छात्रों के साथ मारपीट की थी। इस हमले में एआइएसएफ के नेता और पटना विश्वविद्यालय के छात्रसंघ के तत्कालीन उपाध्यक्ष अंशुमान भी कथित तौर पर शामिल थे। बाद में भूमिहार समुदाय के अंशुमान पार्टी संगठन के खिलाफ ही गतिविधियों में लिप्त रहे और इसलिए उन्हें निकाल दिया था। दिलचस्प कि छात्रसंघ चुनाव में उनके समुदाय के छात्रों का समर्थन लेने के लिए ही संगठन ने उन्हें शामिल किया था और एकाएक उपाध्यक्ष प्रत्याशी बनाया था। राज्य में वाम संगठनों में सवर्णों के वर्चस्व के ऐसे कई दास्तान भरे पड़े हैं।

लिहाजा, हमें मोदी का श्हमशक्लश नहीं चाहिए। पुरानी हिन्दी फिल्मों सरीखा एक अच्छा दिखने वाला और दूसरा बुरा। खुद भूमिहार समुदाय के कन्हैया बार-बार रोहित वेमुला या आंबेडकर का नाम ले रहे हैं। यह अच्छी बात है पर क्या इसकी वजह वामपंथियों के खत्म होती प्रासंगिकता और दलित छात्र संगठन का मजबूत उभार है? लेकिन प्रतिनिधित्व के सवाल के बगैर यह अधूरा है। अगर वाकई इन लोगों को अपनी गलती का एहसास हो रहा है तो जिस मनुवाद और ब्राह्मणवाद से वे आजादी की बात कर रहे हैं, क्या वे पहले अपने संगठन या पार्टी पर लागू करेंगे? और यह बात अन्य वाम संगठनों पर भी इसी तरह लागू होती है।

दैनिक जागरण में प्रकाशित

झूठ के सहारे राजनीति

● वेंकैया नायडू

कांग्रेस और वामदल युवा रिसर्च स्कॉलर रोहित वेमुला की आत्महत्या और जेएनयू में लगे देशविरोधी नारे की घटना को न सिर्फ अपने लिए राजनीतिक अवसर के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं, बल्कि इस पर क्षुद्र राजनीति भी कर रहे हैं। वे राजग सरकार को बदनाम करने के लिए द्वेषपूर्ण और झूठा अभियान चला रहे हैं और इस क्रम विश्वविद्यालयों को भी नहीं बख्श रहे हैं। हालांकि वे अपनी इस कुटिल योजना में सफल नहीं हो पाए हैं और छात्रों, बुद्धिजीवियों और आम नागरिकों की बड़ी आबादी को अपने इरादों से प्रभावित नहीं कर सके हैं। विश्वविद्यालयों की बदहाली के जिम्मेदार कारकों और भारत की एकता की चुनौतियों पर चर्चा करने के बजाय ये गैरजिम्मेदार और निंदनीय तरीके से छात्रों के भविष्य से खिलवाड़ और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर देश की छवि को धूमिल कर रहे हैं।

कांग्रेस के उपाध्यक्ष राहुल गांधी जेएनयू और हैदराबाद विश्वविद्यालय में देशविरोधी नारे लगाने वालों के समर्थन में बिना सोचे समझे खड़े हो गए। उन्होंने यह भी सोचना जरूरी नहीं समझा कि उनके इस अपरिपक्व कार्य से देशविरोधी तत्वों को ऊर्जा मिलेगी। अभिव्यक्ति की आजादी की भी गलत व्याख्या की जा रही है। कांग्रेस और वामदल देशविरोधी नारे को भी बोलने की स्वतंत्रता की कसौटी पर न्यायसंगत ठहरा रहे हैं। हम सब जानते हैं कि संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार असीमित नहीं है। इस पर संविधान ने ही तार्किक प्रतिबंध लगा रखा है। कुछ दूसरे विरोधी दल भी इस सच्चाई को नजरअंदाज कर रहे हैं और दोहरा आचरण कर रहे हैं, जिससे संदेश जा रहा है कि सरकार अपनी आलोचना को ही देशद्रोह मान रही है। जबकि सरकार विरोधी नारे और देश विरोधी नारे में अंतर करना बहुत आसान है। विचारों में असहमति हमारे मूल में है, लेकिन देश को तोड़ने की बातों को सहन नहीं किया जा सकता। कांग्रेस और वामदल देश में तनाव और कुछ विश्वविद्यालयों में अशांति फैलाने के असल जिम्मेदार हैं। यह न सिर्फ उनकी सोची समझी रणनीति है, बल्कि राजनीति का हिस्सा भी है। कांग्रेस को ऐसी राजनीति रास आती है और वह पार्टी और देश से पहले प्रथम परिवार के बारे में सोचती है। वहीं वाम दलों के लिए कमजोर और लचर सिस्टम उनकी अप्रासंगिक हो चुकी विचारधारा का एक अंतर्निहित हिस्सा है।

दुर्भाग्य से मीडिया के एक भाग द्वारा इस मुद्दे को जरूरत से ज्यादा तूल देने से भी गलत संदेश गया। यह कहना गलत होगा कि जेएनयू की घटना का देश के छात्रों पर व्यापक असर नहीं हुआ होगा। साठ साल तक सत्ता में रहने वाली कांग्रेस का अकादमिक-सांस्कृतिक संस्थानों पर एकाधिकार रहा। वे अब भी चाहते हैं कि इन संस्थानों पर उनका वर्चस्व बरकरार रहे। कांग्रेस और वामदल, दोनों अपने विरोध को सुनना पसंद नहीं करते हैं। वे अपने विरोधी मतों

को ध्वस्त कर देना चाहते हैं। रोहित वेमुला की दुर्भाग्यपूर्ण आत्महत्या को रणनीति के तहत मुद्दा बना दिया गया और इसके जरिये केंद्रीय मंत्री बंडारू दत्तात्रेय सहित कुछ नेताओं की छवि को दागदार बनाने का प्रयास किया गया। इसमें कोई दो मत नहीं रोहित की आत्महत्या दुर्भाग्यपूर्ण थी और इससे देश ने एक होनहार स्कॉलर को खो दिया। आत्महत्या की खबर चौंकाने वाली थी, लेकिन उससे भी ज्यादा चौंकाने वाली खबर विभिन्न दलों के नेताओं द्वारा इसे सियासत का मुद्दा बनाने की थी। पूरे देश ने देखा कि विपक्ष ने कैसे एक छात्र की आत्महत्या को अपने राजनीतिक अवसर के रूप में इस्तेमाल किया।

कम्युनिस्ट पार्टियां अपने कामों से लोगों का दिल नहीं जीत सकीं तो कुछ विश्वविद्यालयों में अपने संगठनों का इस्तेमाल कर देश में सामाजिक तनाव पैदा कर रही हैं। दुर्भाग्य की बात यह है कि देश की सबसे पुरानी पार्टी भी न सिर्फ उनके कदमों को सराह रही है, बल्कि उनके साथ खड़ी हो गई है। अंबेडकर स्टूडेंट एसोसिएशन (एएसए) अल्ट्रा लेफ्ट का अग्रणी संगठन है और हैदराबाद विश्वविद्यालय में इसका प्रभाव है। अपने राजनीतिक विरोधियों को डराने-धमकाने का इसका इतिहास रहा है। विश्वविद्यालय की दलित स्टूडेंट यूनियन से इसका कोई मेलजोल नहीं है। पुलिस को रोहित के मृत शरीर तक जाने से रोका गया। एएसए के लोगों ने पुलिस को ब्लैकमेल कर अपनी मर्जी से कुछ लोगों के खिलाफ एससी-एसटी एक्ट के तहत मामला दर्ज कराया। यह पूरी तरह सत्य है कि दलित प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के समर्थक हैं। संसद में भाजपा के सबसे ज्यादा दलित और पिछड़ी जाति के सांसद हैं। कांग्रेस और कम्युनिस्ट सच्चाई को ढकने का काम रहे हैं। वे हैदराबाद की घटना को राजनीतिक बढ़त हासिल करने के लिए दलित विरोधी मामले के रूप में पेश कर रहे हैं। एएसए द्वारा याकूब मेमन के लिए आयोजित नमाजे जनाजा कार्यक्रम को आखिर किस तरह जायज ठहराया जा सकता है, जबकि वह सैकड़ों लोगों की मौत का गुनहगार था और उसे फांसी की सजा मिली थी।

मंत्री बंडारू दत्तात्रेय ने अपने पत्र में किसी भी छात्र के नाम का उल्लेख नहीं किया था और न ही किसी को अतिवादी और देशविरोधी बताया था। क्षेत्र के एक जिम्मेदार जनप्रतिनिधि होने के नाते उन्होंने सिर्फ अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह किया। उन्हें जो शिकायत मिली थी उसे आगे बढ़ाया था, जिसमें लिखा था कि विश्वविद्यालय जातिवाद, अतिवाद और देशविरोधी राजनीति का अड्डा बन गया है। उसमें विश्वविद्यालय से जरूरी कार्रवाई करने की मांग की गई थी। यह झूठ फैलाया गया कि दत्तात्रेय द्वारा लिखे पत्र के कारण रोहित आत्महत्या के लिए विवश हुआ। साथ ही दुष्प्रचार किया गया कि रोहित को छात्रवृत्ति नहीं दी जा रही थी। बाद में यह पूरी तरह गलत साबित हुआ। दत्तात्रेय के पत्र में जो बातें थीं, कुछ उसी तरह की बातें कांग्रेस के सांसद वी। हनुमंत राव द्वारा लिखे पत्र भी थीं। जब कोई सांसद किसी मामले में अपनी चिंता जाहिर करता है तो संबंधित विश्वविद्यालय तक उनकी बातों को पहुंचाना मानव संसाधन मंत्रलय के नौकरशाहों की दैनिक प्रक्रिया है। कांग्रेस के कार्यकाल में एचसीयू से कई छात्र निष्कासित या निलंबित किए गए हैं। संप्रग के दस वर्ष के शासनकाल में दस छात्रों ने आत्महत्या की, तब न तो राहुल गांधी और न ही माकपा नेता सीताराम येचुरी ने विश्वविद्यालय

जाना जरूरी समझा। जेएनयू में भगवान राम का पुतला दहन, दुर्गा की निंदा में पर्चे बांटना, महिषासुर और अफजल के गुणगान का आखिर कोई किस तरह समर्थन कर सकता है। हैदराबाद विश्वविद्यालय और जेएनयू में लगे नारे एक ही तरह के थे। यह जांच का विषय है कि देशविरोधी तत्वों के निशाने पर सीधे-साधे छात्र तो नहीं हैं। हमें यह तथ्य नहीं भूलना चाहिए कि सतत सजगता ही स्वतंत्रता कायम रखती है।

(लेखक केंद्रीय मंत्री हैं)

क्या जाह्नवी की बहस की चुनौती स्वीकारेंगे कन्हैया?

पिछले एक महीने से मीडिया की सुर्खियों में छाए जेएनयू छात्रसंघ के अध्यक्ष कन्हैया कुमार ने जेल से बाहर आने के बाद जो भाषण दिया उसकी काफी चर्चा हुई। इस भाषण में तमाम बातों के अलावा कन्हैया कुमार ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की तीखी आलोचना की थी।

अब पंजाब की एक १५ वर्षीय लड़की ने कन्हैया कुमार को खुली बहस की चुनौती दी है। २६ जनवरी को स्वच्छ भारत अभियान में अपने योगदान के लिए सम्मानित हो चुकी जाह्नवी बहल ने कन्हैया को कहीं भी और कभी भी बहस करने की चुनौती देते हुए कहा कि घर में बैठकर किसी आलोचना करना बहुत आसान है और कन्हैया को पीएम मोदी की तरह काम करने पर ध्यान देना चाहिए।

कन्हैया द्वारा पीएम मोदी की आलोचना को गलत बताते हुए जाह्नवी ने कहा, 'कन्हैया जी ने पीएम मोदी के खिलाफ जो कुछ भी कहा वह पूरी तरह गलत है। बेहतर होता अगर वह पीएम मोदी के खिलाफ बोलने के बजाय उन देशद्रोहियों के खिलाफ बोलते जिन्होंने देशविरोधी नारे लगाए थे।' कन्हैया कुमार को बहस की चुनौती देकर जाह्नवी सोशल मीडिया पर छा गई और वह ट्विटर में टॉप-१० में ट्रेंड करने लगीं। रुश्रींदअपठमींस हैशटैग के साथ लोगों ने जमकर ट्वीट किए और जाह्नवी की तारीफ करते हुए उन्हें असली होरी करार दिया और साथ ही जेएनयू में राष्ट्रविरोधी नारे लगाने वालों और कन्हैया कुमार पर भी ट्वीट करके निशाना साधा। इतना ही नहीं लोगों ने कन्हैया को ज्यादा लाइमलाइट देने के लिए मीडिया पर भी निशाना साधा।

साभार : आइचौक.इन

नौ तारीख पर भी कुछ बोलो कन्हैया?

● पीयूष द्विवेदी

विगत दिनों आखिरकार देशद्रोह के आरोपी जेएनयू छात्रसंघ के अध्यक्ष कन्हैया कुमार को न्यायालय से छह महीने की अंतरिम जमानत मिल गई। इस अंतरिम जमानत के मिलने के बाद से कन्हैया के सौ-दो सौ जेएनयू वासी समर्थकों और एकाध दर्जन मीडिया चौनलों पर ज्ञान बघारने वाले वामपंथी बुद्धिजीवियों की प्रसन्नता देखने लायक है।

लग रहा है कि जैसे कन्हैया अंतरिम जमानत पर नहीं, बाइज्जत बरी होकर आया हो। अपनी खुशी के खुमार में कन्हैया समर्थक बुद्धिजीवी शायद अंधे और बहरे हो गए हैं। इसीलिए उन्हें इस अंतरिम जमानत के फैसले में मौजूद कन्हैया और जेएनयू के प्रति अदालत की तल्ख टिप्पणिया दिखाई-सुनाई नहीं दे रही हैं। तभी तो इस अंतरिम जमानत को छह महीने की एक रियायत मानने की बजाय वे इसे कन्हैया की जीत बता रहे हैं। उन्हें शायद अंदाजा ही नहीं कि ऐसा करके वे न केवल अपनी बौद्धिकता के स्तर को मटियामेट कर रहे हैं, बल्कि देश की जो थोड़ी-बहुत जनता उनसे परिचित है, उसकी नजरों में भी खुद को गिरा रहे हैं।

संभव है, अपनी इस गलती का उन्हें आगे अंदाजा हो लेकिन बस कहीं देर न हो जाय! बहरहाल, कन्हैया की बात करें तो अंतरिम जमानत मिलने के बाद संभवतः सबसे पहले उसके एक परम प्रेमी न्यूज चौनल के एक परम कन्हैया समर्थक और तथाकथित निष्पक्ष पत्रकार महोदय ने उससे फोन पर बात की। लेकिन, ज्यादा बात नहीं हुई। इसके बाद शाम में कन्हैया की रिहाई पर जेएनयू में कन्हैया के सौ-दो सौ समर्थकों की भीड़ जुटी जिसको कन्हैया ने संबोधित कर श्लाल सलाम लाल सलामश करने के बाद तरह-तरह की बातें कीं।

प्रधानमंत्री पर बेवजह का निशाना साधने से लेकर अपने जेल के अनुभवों का संभवतः मनगढ़ंत विवरण प्रस्तुत किया। कुल मिलाकर अपने इस भाषण में उसने दुनिया भर का ज्ञान तो बघारा मगर सबसे जरूरी बात, जिसपर देश उसकी सोच को जानना चाहता था, उसे टाल गया। नौ तारीख को लगे देशविरोधी नारों और उसमे गिरफ्तार उसके खालिद आदि साथियों पर वो कुछ नहीं बोला।

इसे न्यायपालिका के अधीन कहकर किनारे कर दिया। हालांकि भाषण के अंत में उसने अपने खालिद और अनिर्बान आदि साथियों के लिए जिंदाबाद के नारे जरूर लगाए। फिर दो-एक दिन बाद एक चौनल के साक्षात्कार में भी जब उससे नौ तारीख पर सवाल पूछा गया तो श्न्यायपालिका के अधीनश का तर्क रखकर सवाल को टाल गया। विचार करें तो यह ठीक

है कि ९ तारीख की नारेबाजी का मामला अभी न्यायालय में है और इस नाते उसमे आरोपित लोगों पर अभी कोई पूर्ण पक्ष व्यक्त नहीं किया जाना चाहिए। लेकिन इसका ये कतई अर्थ नहीं कि उसदिन की घटना पर अपनी राय भी न रखी जा सके। कन्हैया कम से कम इन प्रश्नों का उत्तर तो जरूर दे सकता है और उसे देना भी चाहिए कि नौ तारीख को जो हुआ, उसपर उसकी क्या राय है?

वो उसके समर्थन में हैं या विरोध में? अगर विरोध में है तो फिर उस दिन छात्रसंघ का अध्यक्ष होने के नाते उन देशविरोधी गतिविधियों को रोकने के लिए कुछ किया क्यों नहीं? लेकिन इन जवाब दिए जाने लायक सवालों को जिस तरह से कन्हैया टाल जा रहा है, इसी को सुविधा की अभिव्यक्ति कहते हैं। इसके प्रयोग में वामपंथी ब्रिगेड का कोई सानी नहीं है। शायद वामपंथ में घुसने के बाद सबसे पहले इन्हें इसीकी ट्रेनिंग दी जाती है कि कैसे संविधान का सुविधानुसार उपयोग भी करना है और मौका लगने पर उसे धता भी बताना है। बेशक आप बहुत चालाक हैं, कॉमरेड! लेकिन यह देश भी बेवकूफ नहीं है। आपके हर रंग और ढंग को भलीभांति समझता है। इसलिए कन्हैया कुमार! लोगों को बेवकूफ बनाने की नाकाम कोशिश बंद करो और इधर–उधर की बात न कर सीधे–सीधे नौ तारीख की घटना का जवाब दो। लोग चाहते हैं कि नौ तारीख पर भी कुछ कहो कन्हैया....

हिंसा का इतिहास पुराना है

● डॉ वत्सला

हम जेएनयू के गठन से पहले, बतौर पी.एचडी। छात्र एसआईएस (तत्कालीन आईएसआईएस) के साथ जुड़े थे। हम में से कुछ (जिनमें मेरे पति भी थे) ने पी.एचडी। के बाद जेएनयू में अध्यापन शुरू किया और सेवानिवृत्ति तक वहां पढ़ाते रहे।

९ फरवरी का विवाद विश्वविद्यालय परिसर में हिंसा और पुलिस के हस्तक्षेप की यह पहली घटना नहीं थी। मुझे याद है १९८३ में मैं श्वामश हिंसा की सीधी शिकार हुई थी (कई अन्य की तरह जो श्वामपंथीश नहीं थे)। मेरे पति एवं मैं दो वर्ष बाद स्वदेश लौटे ही थे। मेरे पति एसआईएस की पुरानी नौकरी पर लौट आए थे और हम रहने का स्थान तलाश रहे थे। एक शाम हम जेएनयू के दक्षिणापुरम में एक मित्र प्रोफेसर के यहां गए। हम बातचीत में व्यस्त थे कि अचानक दंगाई आ पहुंचे। घर को उन्होंने चारों ओर से घेर लिया और पथराव शुरू कर दिया। हम बुरी तरह से डर गए। उस समय मुझे आठ महीने का गर्भ था। लगातार बरस रहे पत्थर जब हमारे मेजबान के घर की बैठक में आकर गिरने लगे तो उन्होंने मुझे अपने शयनकक्ष में एक चारपाई के नीचे छुपा दिया। हम हैरान थे कि इतने वरिष्ठ, आदरणीय एवं किसी भी तरह की राजनीति से दूर रहने वाले प्रोफेसर के घर पर हमला क्यों किया गया? उलझन उस समय दूर हुई जब पत्थरबाजी करके वापस लौटते हुए दंगाइयों के लाल सलाम के नारे हमारे कानों में पड़े। यह घटना मेरे लिए बुरे सपने जैसी थी। हम अपना स्कूटर छोड़कर पिछले दरवाजे से निकले। बच निकलने के लिए हमने घर के पीछे की झाड़ियों का रास्ता पकड़ा। मैं हैरान थी कि क्या यह वही जेएनयू परिसर था जहां मैं रही और शिक्षित हुई थी! इस घटना के बाद ३०० छात्रों को गिरफ्तार किया गया और विश्वविद्यालय एक माह तक बंद रहा था। इससे जुड़ी रिपोर्ट पर पढ़ सकते हैं। क्या येचुरी, प्रो। चिनॉय एवं अन्य उपरोक्त घटना से इनकार कर सकते हैं?

दरअसल, शुरुआत में जेएनयू की छात्र राजनीति दो धड़ों में विभाजित थी-वामपंथी एवं श्मुक्त विचारकश। एबीवीपी का पदार्पण जेएनयू परिसर में बहुत हाल की घटना है। इसलिए प्रो। चिनॉय तब पूर्णतया गलत होते हैं जब वे जेएनयू की हिंसा के लिए पूरी तरह से एबीवीपी को जिम्मेदार ठहराते हैं।

हमारा अनुभव है कि जब तक जेएनयू के शीर्ष सोपान पर श्वामपंथीश कब्जा रहेगा, तब तक इतर विचारधारा रखने वालों के लिए हालात बदतर ही बने रहेंगे। सच यह है कि वामपंथी होने का दम भरने वाले अध्यापकों को उच्च वेतन एवं रहने के लिए बड़े क्वार्टर मुहैया कराए जाते हैं। यह देख कई अन्य भी रातोरात श्वामपंथीश हो गए थे। अन्य कई अध्यापक जो उस श्खेमेश में नहीं थे, उन्हें पदोन्नतियां नहीं मिलीं। कुछ को तो योग्य होने के बावजूद पक्का नहीं

किया गया। पीएचडी एवं चार वर्ष के अध्यापन अनुभव के बावजूद, मेरे पति तीन वर्ष तक तदर्थ रूप से काम करते रहे थे। पक्का किए जाने के बाद भी उन्हें बुनियादी वेतन बिना बढ़ोतरी के दिया जाता रहा। श्वामपंथीश भेदभाव का इससे बड़ा रूप और क्या हो सकता है? इतना ही नहीं, १९७० के दशक में श्मुख्यधाराश का हिस्सा न बनने वाले अध्यापकों का जीना भी मुहाल कर दिया गया था। उन पर झूठे आरोप लगाए जाते रहे। यह जगजाहिर है कि विश्वविद्यालय के शीर्ष श्वाम धड़ेश की मिलीभगत से श्पार्टी कर्मीश लंबे समय तक अवैध रूप से होस्टलों में जमे रहते थे।

इन उदाहरणों के आधार पर उन दिनों दिल्ली के समूचे शैक्षणिक अधिष्ठानों के श्रक्तिम स्वरूपश पर और बात करना बेमानी होगा। उन दिनों सभी क्षेत्रों पर श्वामपंथीश एकाधिकार था। शिक्षा मंत्रालय, यूजीसी, एनसीईआरटी आदि जैसे संस्थानों में कई अकादमिक एवं गैर-अकादमिक पदों पर श्वामपंथीश काबिज थे। तो आखिर अब वह शिक्षा के श्भगवाकरणश पर क्यों शिकायत करते हैं?

कन्हैया पर लगे महिला से बदसलूकी के आरोप

जेएनयू में जारी विवाद के बीच यह खुलासा हुआ है कि देशद्रोह के आरोप का सामना कर रहे छात्रसंघ अध्यक्ष कन्हैया कुमार पर एक छात्रा से अभद्र व्यवहार करने और उसे धमकाने के आरोप में यूनिवर्सिटी प्रशासन ने पिछले साल जुर्माना लगाया था। घटना बीते साल १० जून की है। उस वक्त कन्हैया छात्रसंघ अध्यक्ष नहीं थे। छात्रा ने कन्हैया को कैंपस के अंदर खुले में पेशाब करने से रोका था। यह छात्रा अब दिल्ली यूनिवर्सिटी में पढ़ाती है। छात्रा का आरोप है कि जब उसने आपत्ति जताई तो कन्हैया ने उसके साथ 'अभद्र व्यवहार' किया। यह भी आरोप लगाया कि कन्हैया ने उसे 'सायकोपैथ' करार दिया और गंभीर परिणाम झेलने की चेतावनी दी। छात्रा की ओर से शिंकायंत दर्ज कराए जाने के बाद जेएनयू प्रशासन ने एक प्रहक्टोरियल जांच कराई, जिसमें कन्हैया को दोषी पाया गया. तत्कालीन चीफ प्रहक्टर कृष्ण कुमार की ओर से १६ अक्टूबर २०१५ को जारी आदेश के मुताबिक, ''यह हरकत गंभीर है और जेएनयू के स्टूडेंट के अनुकूल नहीं है। इसमें उसके (कन्हैया) खिलाफ कड़ी अनुशासनात्मक कार्रवाई होनी चाहिए।...उसके करियर को ध्यान में रखते हुए वाइस चांसलर ने इस मामले में नर्म रुख अपनाया। कन्हैया पर ३००० रुपए का जुर्माना लगाया जाता है। उन्हें चेतावनी दी जाती है कि भविष्य में वे ऐसी किसी गतिविधि में शामिल न हों अन्यथा उनके खिलाफ कड़ी अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाएगी।''

साभार : जनसत्ता

दैनिक जागरण में प्रकाशित

दोहरे मानदंडों का वामपंथ

● लोकेन्द्र सिंह

देशद्रोह के आरोपी और जेएनयू छात्रसंघ के अध्यक्ष कन्हैया कुमार को छह माह की अंतरिम जमानत मिलने पर वामपंथी विचारधारा के अनुयायियों में काफी उत्साह है। कन्हैया के जेल से बाहर आने पर वामपंथियों और उसके समर्थकों ने होली, दीवाली सब एक साथ मना ली। रात में जेएनयू परिसर में कन्हैया कुमार के भाषण के बाद उसके समर्थक फूलकर कुप्पा हैं। सब यह बताने की कोशिश कर रहे हैं कि कन्हैया को देश से नहीं बल्कि देश में आजादी चाहिए। वह तो भुखमरी, गरीबी, अव्यवस्था से आजादी मांग रहा है। अभिव्यक्ति की आजादी चाहिए। खुद को वैज्ञानिक सोच का बताने वाले तथाकथित प्रगतिशील इस तरह की अतार्किक बहस भी शुरू कर सकते हैं, यह गजब की बात है। यदि अभिव्यक्ति की आजादी नहीं होती तब क्या कन्हैया कुमार जेल से छूटकर जेएनयू में मजमा जुटाकर प्रधानमंत्री को कोस सकते थे या फिर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर उन्हें वही देशविरोधी नारे लगाने की आजादी चाहिए। भुखमरी, गरीबी और अव्यवस्था से तो सबको आजादी चाहिए। यह सवाल दो साल पहले सत्ता में आई राजग सरकार की अपेक्षा करीब ६० साल शासन में रही कांग्रेस से पूछा जाना अधिक व्यावहारिक होता। अब इसे बदलाव कहा जाए या फिर खुद को बचाने के लिए कन्हैया कुमार की चालाकी, अपने पूरे भाषण में उन्होंने कश्मीर, केरल, बंगाल की आजादी का नारा बुलंद नहीं किया। आतंकी अफजल, मकबूल और याकूब को शहीद नहीं बताया गया। हालांकि इनका विरोध भी नहीं किया। यह संभवतः पहली बार था कि कन्हैया की तकरीर के दौरान लाल झंडे की जगह तिरंगा फहराया गया और आखिर में भारत माता की जय का उद्घोष किया गया। यह भी चौंकाने वाला बदलाव है कि जो लोग जेएनयू में नौ फरवरी तक जिस न्यायपालिका को हत्यारा बता रहे थे, अब उन्हें उसी व्यवस्था में भरोसा दिखने लगा है। हालांकि यह बदलाव वास्तविक नहीं, बल्कि आभासी है। सब राजनीतिक चतुराई है। वामपंथी इस तरह की राजनीति में माहिर हैं। वरना क्या कारण है कि आत्महत्या कर रहे जिन किसानों को कन्हैया अपना पिता कह रहा था, नंदीग्राम में उन्हीं पिताओं की हत्या करने वालों के खिलाफ आज तक और कल भी उसने कुछ नहीं बोला। एक दिन पूर्व ही वामपंथी-माओवादी विचारधारा से प्रेरित नक्सलियों ने १६ गरीब मासूम ग्रामीणों की हत्या की है, उनके प्रति भी संवदेना जताना कन्हैया कुमार ने जरूरी नहीं समझा। यह खामोशी क्या सिर्फ इसलिए कि उनकी हत्या करने वाले नक्सली थे। जिस विषय पर वामपंथी फंस जाते हैं, उससे पलटी मारने में भी वे देरी नहीं लगाते। कन्हैया प्रकरण इसका जीता-जागता प्रकरण है। वामपंथी हिटलर को तो गाली देते हैं, लेकिन स्टालिन और माओ की तानाशाही और क्रूर प्रवृत्ति पर बात करने से भागते हैं। हिंदू धर्म पर आघात पहुंचाने के लिए

अभिव्यक्ति की आजादी चाहिए, लेकिन जैसे ही तस्लीम नसरीन और सलमान रुश्दी की बात आती हैए ये कन्नी काट जाते हैं। जैसे ही वामपंथियों को अहसास हुआ कि आतंकियों का शहीदी दिवस मनाने से देश आक्रोशित है, उन्होंने कुछ समय से अफजल और याकूब का नाम रटना बंद कर दिया है। देश के जवानों को भी अब कन्हैया कुमार अपना भाई बताने लगा है। कन्हैया कुमार का पूरा भाषण आरएसएस, एबीवीपी, भाजपा और नरेंद्र मोदी के खिलाफ था। अपने वैचारिक प्रतिद्वंद्वियों को बदनाम करने के लिए उसने गोलवलकर और मुसोलनी की मुलाकात जैसे झूठ का सहारा भी लिया। यह भी असल वामपंथ की पहचान है। विरोधी को गोएबल्स के सिद्धांत से झूठ के चक्रव्यूह में फंसा दो। बहरहाल देशद्रोह के आरोपी कन्हैया के भाषण से ऊर्जा पाए वामपंथियों को जोश में होश नहीं खोना चाहिए। उन्हें बार बार हाईकोर्ट की सीख को याद करना चाहिए और अपनी सोच को बेहतर करना चाहिए। उच न्यायालय ने कन्हैया को अंतरिम जमानत देते हुए गंभीर टिप्पणियां की हैं। कन्हैया के मार्गदर्शकों और समर्थकों को उन टिप्पणियों पर ध्यान देना चाहिए। जेएनयू में नौ फरवरी को हुए कार्यक्रम में जो पोस्टर और नारे लगाए गए थे उसकी तुलना दिी हाईकोर्ट ने संक्रमण से की है। हाईकोर्ट ने कहा है कि यह संक्रमण जेएनयू के छात्रों में फैल गया है और महामारी का रूप ले इससे पहले इस पर नियंत्रण जरूरी है। जो भी नारे और पोस्टर जेएनयू में लगाए गए थे, वह किसी भी सूरत में अभिव्यक्ति की आजादी नहीं है। न्यायमूर्ति ने यह भी कहा है कि जेएनयू के शिक्षकों को अपनी भूमिका के साथ न्याय करना चाहिए। भटके छात्रों को सही रास्ते पर लाना शिक्षकों की जिम्मेदारी है, लेकिन प्रतीत होता है कि वामपंथी विचारधारा से प्रेरित शिक्षकों और बुद्धिजीवियों पर न्यायालय के संदेश का कोई असर नहीं है और बदलने को तैयार नहीं दिखते।

हिन्दीमीडिया.इन

जेएनयू के भारत विरोधी!

उन सिरफिरों का इलाज जरूरी जो जेएनयू की छवि और राष्ट्र की अस्मिता से खेल रहे हैं

● संजय द्विवेदी

यह एक यक्ष प्रश्न है कि इतने बड़े विचारकों, विश्व राजनीति-अर्थनीति की गहरी समझ, तमाम नेताओं की अप्रतिम ईमानदारी और विचारधारा के प्रति समर्पण के किस्सों के बावजूद भारत का वामपंथी आंदोलन क्यों जनता के बीच स्वीकृति नहीं पा सका? अब लगता है, भारत की महान जनता इन राष्ट्रद्रोहियों को पहले से ही पहचानती थी, इसलिए इन्हें इनकी मौत मरने दिया। जो हर बार गलती करें और उसे ऐतिहासिक भूल बताएं, वही वामपंथी हैं। वामपंथी वे हैं जो नेताजी सुभाष चंद्र बोस जैसे राष्ट्रनायक को श्तोजो का कुत्ताश बताएं, वे वही हैं जो चीन के साथ हुए युद्ध में भारत विरोध में खड़े रहे। क्योंकि चीन के चेयरमैन माओ उनके भी चेयरमेन थे। वे ही हैं जो आपातकाल के पक्ष में खड़े रहे। वे ही हैं जो अंग्रेजों के मुखबिर बने और आज भी उनके बिगड़े शहजादे (माओवादी) जंगलों में आदिवासियों का जीवन नरक बना रहे हैं।

देश तोड़ने की दुआएं कौन कर रहे हैः अगर जेएनयू परिसर में वे'पाकिस्तान जिंदाबाद' करते नजर आ रहे हैं, तो इसमें नया क्या है? उनकी बदहवासी समझी जा सकती है। सब कुछ हाथ से निकलता देख, अब सरकारी पैसे पर पल रहे जेएनयू के कुछ बुद्धिधारी इस इंतजाम में लगे हैं कि आईएसआई (पाकिस्तान) उनके खर्चे उठा ले। जब तक जेएनयू में भारत विरोधी नारे लगाने वाली ताकतें हैं ,देश के दुश्मनों को हमारे मासूम लोगों को कत्ल करने में दिक्कत क्या है? हमारा खून बहे, हमारा देश टूटे यहीभारतीय वामपंथ का छुपा हुआ एजेंडा है। हमारी सुरक्षा एजेंसियां देश में आतंकियों के मददगार स्लीपर सेल की तलाश कर रही हैं, इसकी ज्यादा बड़ी जगह जेएनयू है। वहां भी नजर डालिए।

सरकारी पैसे पर राष्ट्रद्रोह की विषवेलः जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय एक ऐसी जगह है, जहां सरकारी पैसे से राष्ट्रद्रगोह के बीज बोए जाते हैं। यहां ये घटनाएं पहली बार नहीं हुयी हैं। ये वे लोग हैं नक्सलियों द्वारा हमारे वीर सिपाहियों की हत्या पर खुशियां मनाते हैं। अपनी नाक के नीचे भारतीय राज्य अरसे से यह सब कुछ होने दे रहा है,यह आश्चर्य की बात है। इस बार भी घटना के बाद माफी मांग कर अलग हो जाने के बजाए, जिस बेशर्मी से वामपंथी दलों के नेता मैदान में उतरकर एक राष्ट्रद्रोही गतिविधि का समर्थन कर रहे हैं, वह बात बताती है, उन्हें अपने किए पर कोई पछतावा नहीं है। यह कहना कि जेएनयू को

बदनाम किया जा रहा है,ठीक नहीं है। गांधी हत्या की एक घटना के लिए आजतक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को लांछित करने वाली शक्तियां क्यों अपने लिए छूट चाहती हैं? जबकि अदालतों ने भी गांधी हत्या के आरोप से संघ को मुक्त कर दिया है। टीवी बहसों को देखें तो अपने गलत काम पर पछतावे के बजाए वामपंथी मित्र भाजपा और संघ के बारे में बोलने लगते हैं। भारत को तोड़ने और खंडित करने के नारे लगाने वाले और 'इंडिया गो बैक' जैसी आवाजें लगाने वाले किस तरह की मानसिकता में रचे बसे हैं, इसे समझा जा सकता है। देश तोड़ने की दुआ करने वालों को पहचानना जरूरी है।

राहुल जी, आप वहां क्या कर रहे हैः वामपंथी मित्रों की बेबसी, मजबूरी और बदहवासी समझी जा सकती है, किंतु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसी जिम्मेदार पार्टी के नेता राहुल गांधी का रवैया समझ से परे है। कांग्रेस पार्टी का राष्ट्रीय आंदोलन का अतीत और उसके नेताओं का राष्ट्र की रक्षा के लिए बलिदान लगता है राहुल जी भूल गए हैं। आखिर ऐसी क्या मजबूरी है कि वे जाकर देशद्रोहियों के पाले में खड़े हो जाएं? उनकी पं. नेहरू, श्रीमती इंदिरा गांधी और श्री राजीव गांधी की विरासत का यह अपमान है। इनमें से दो ने तो अपने प्राण भी इस राष्ट्र की रक्षा के लिए निछावर कर दिए। ऐसे परिवार का अंध मोदी विरोध या

भाजपा विरोध में इस स्तर पर उतर जाना चिंता में डालता है। पहले दो दिन कांग्रेस ने जिस तरह की राष्ट्रवादी लाइन ली, उस पर तीसरे दिन जेएनयू जाकर राहुल जी ने पानी फेर दिया। जेएनयू जिस तरह के नारे लगे उसके पक्ष में राहुल जी का खड़ा होना बहुत दुख की बात है। वे कांग्रेस जैसी गंभीर और जिम्मेदार पार्टी के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष हैं। उन्हें यह सोचना होगा कि भाजपा और नरेंद्र मोदी का विरोध करते-करते कहीं वे देशद्रोहियों के एजेंडे पर तो नहीं जा रहे हैं। उन्हें और कांग्रेस पार्टी को यह भी ख्याल रखना होगा कि किसी दल और नेता से बड़ा है देश और उसकी अस्मिता। देश की संप्रभुता को चुनौती दे रही ताकतों से किसी भी तरह की सहानुभूति रखना राहुल जी और उनकी पार्टी के लिए ठीक नहीं है। जेएनयू की घटना को लेकर पूरे देश में गुस्सा है, ऐसे समूहों के साथ अपने आप को चिन्हित कराना, कांग्रेस की परंपरा और उसके सिद्धांतों के खिलाफ है।

अभिव्यक्ति की आजादी के नाम परः कौन सा देश होगा जो अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर खुद को तोड़ने की नारेबाजी को प्रोत्साहन देगा। राष्ट्र के खिलाफ षडयंत्र और देशद्रोहियों की याद में कार्यक्रम करने वालों के साथ जो आज खड़े हैं, वे साधारण लोग नहीं हैं। जिस देश ने आपको सांसद, विधायक, मंत्री और प्रोफेसर बनाया। लाखों की तनख्वाहें देकर आपके सपनों में रंग भरे, आपने उस देश के लिए क्या किया? आजादी आप किससे चाहते हैं? इस मुल्क से आजादी, जिसने आपको एक बेहतर जिंदगी दी। अन्याय और अत्याचार से मुक्ति दिलाने की आपकी यात्रा क्यों गांव-गरीब और मैदानों तक नहीं पहुंचती? अपने ही रचे जेएनयू जैसे स्वर्ग में शराब की बोतलों और सिगरेट की घुंओं में 'क्रांति' करना बहुत आसान है किंतु जमीन पर उतर कर आम लोगों के लिए संघर्ष करना बहुत कठिन है। हिंदुस्तान के आम लोग पढ़े-लिखे लोगों को बहुत उम्मीदों से देखते हैं कि उनकी शिक्षा कभी उनकी जिंदगी में बदलाव लाने का कारण बनेगी। किंतु आपके सपने तो इस देश को तोड़ने के हैं। समाज को तोड़ने के हैं। समाज में तनाव और वर्गसंघर्ष की स्थितियां पैदा कर एक ऐसा वातावरण बनाने पर आपका जोर है ताकि लोगों की आस्था लोकतंत्र से, सरकार से और प्रशासनिक तंत्र से उठ जाए। विदेशी विचारों से संचालित और विदेशी पैसों पर पलने वालों की मजबूरी तो समझी जा सकती है। किंतु भारत के आम लोगों के टैक्स के पैसों से एक महान संस्था में पढ़कर इस देश के सवालों से टकराने के बजाए, आप देश से टकराएंगें तो आपका सिर ही फूटेगा।

जेएनयू जैसी बड़ी और महान संस्था का नाम किसी शोधकार्य और अकादमिक उपलब्धि के लिए चर्चा में आए तो बेहतर होगा, अच्छा होगा कि ऐसे प्रदर्शनों-कार्यक्रमों के लिए राजनीतिक दल या समूह जंतर-मंतर, इंडिया गेट, राजधाट और रामलीला मैदान जैसी जगहें चुनें। शिक्षा परिसरों में ऐसी घटनाओं से पठन-पाठन का वातावरण तो बिगड़ता ही है, तनाव पसरता है, जो ठीक नहीं है। इससे विश्वविद्यालय को नाहक की बदनामी तो मिलती ही है, और वह एक खास नजर से देखा जाने लगता है। अपने विश्वविद्यालय के बचाने की सबसे

ज्यादा जिम्मेदारी शायद वहां के अध्यापकों और छात्रों की ही है। ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति रोकना ही, इस बार मिली बदनामी का सबसे बड़ा इलाज है।

एक लोकतंत्र में होते हुए आपकी सांसें घुट रही हैं, तो क्या माओ के राज में, तालिबानों और आईएस के राज में आपको चौन मिलेगा? सच तो यह है कि आप बेचौन आत्माएं हैं, जिनका विचार ही है भारत विरोध, भारत द्वेष, लोकतंत्र का विरोध। आपका सपना है एक कमजोर और बेचारा भारत। एक टूटा हुआ, खंड-खंड भारत। ये सपने आप दिन में भी देखते हैं, ये ही आपके नारे बनकर फूटते हैं। पर भूल जाइए, ये सपना कभी साकार नहीं होगा, क्योंकि देश और उसके लोग आपके बहकावे में आने को तैयार नहीं है। देश तोड़क गतिविधियों और राष्ट्र विरोधी आचरण की आजादी यह देश किसी को नहीं दे सकता। आप चाहे जो भी हों। जेएनयू या दिल्ली भारत नहीं है। भारत के गांवों में जाइए और पूछिए कि आपने जो किया उसे कितने लोगों की स्वीकृति है, आपको सच पता चल जाएगा। राष्ट्र की अस्मिता और चेतना को चुनौती मत दीजिए। क्योंकि कोई भी व्यक्ति, विचारधारा और दल इस राष्ट्र से बड़ा नहीं हो सकता। चेत जाइए।

देशद्रोह के आरोपी जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी (जेएनयू) छात्रसंघ अध्यक्ष कन्हैया ने एक बार फिर बिगड़े बोल बोले हैं। इस बार उसके निशाने पर भारतीय सेना के जवान हैं। कन्हैया ने कश्मीर का जिक्र करते हुए कहा कि कश्मीर में सेना द्वारा महिलाओं का बलात्कार किया जाता है, सुरक्षा के नाम पर जवान महिलाओं का बलात्कार करते हैं।

हालांकि कन्हैया ने ये भी कहा कि वो सुरक्षाबलों का सम्मान करता है लेकिन जब उसने कश्मीर का जिक्र किया तो कहा कि वहां सेना बलात्कार करती है। कन्हैया ने कश्मीर में सेना को लेकर कहा कि हम सुरक्षाबलों का सम्मान करते हुए भी बोलेंगे कि कश्मीर में सेना द्वारा बलात्कार किया जाता है। हमारे आपस में मतभेद हैं लेकिन इस देश को बचाने और इस देश के संविधान को बचाने में हमारे कोई मतभेद नहीं है। हम आजाद हिन्दुस्तान में समस्याओं से आजादी के लिए संघर्ष कर रहे हैं। बता दें कि संसद हमले के दोषी अफजल गुरु की फांसी का विरोध करने के लिए जेएनयू में नौ फरवरी को एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। कार्यक्रम के दौरान कथित तौर पर भारत विरोधी नारे लगाए गए, जिसके बाद जेएनयू छात्र संघ के अध्यक्ष कन्हैया कुमार को १२ फरवरी को गिरतार कर लिया गया। फिलहाल दिल्ली उच्च न्यायालय ने उसे छह महीने की अंतरिम जमानत पर रिहा कर दिया।

साभार : आईबीएन खबर

Published In DailyPioneer

DEFILING INDIA'S INNER SANCTUARY

• **Anirban Ganguly**

The unkindest part of the JNU fracas is the reality of teachers, who should have been the intellectual pioneers of civilisation, preaching secessionism and separatism. Unfortunately, the list of those who collude to subvert this nation is a long one.

In October 2010, when the BJP demanded that action be taken against writer-activist Arundhati Roy for her comments in a seminar on 'Azadi: The only way', held in New Delhi, these intellectuals had condemned the BJP. Ms Roy had accused the Indian state of waging war against its own people and had also added that Kashmir was never an integral part of India. She said, "A TV journalist stuck a mic in my face and very aggressively said 'Madam, is Kashmir an integral part of India or not? Is Kashmir an integral part of India or not?' about five times. So I said, look Kashmir has never been an integral part of India. However aggressively and however often you want to ask me that. Even the Indian Government has accepted in the UN that it's not an integral part of India. So, why are we trying to change that narrative now.

"See, in 1947, we were told that India became a sovereign nation and a sovereign democracy, but if you look at what the Indian state did from midnight of 1947 onwards, that colonised country, that country that became a country because of the imagination of its coloniser the British drew the map of India in 1899 so that country became a colonising power the moment it became independent, and the Indian state has militarily intervened in Manipur, in Nagaland, in Mizoram, in Kashmir, in Telangana, during the Naxalbari uprising, in Punjab, in Hyderabad, in Goa, in Junagarh.

"So often the Indian Government, the Indian state, the Indian elite, they accuse the Naxalites of believing in protracted war, but actually you see a state - the Indian state that has waged protracted war against its own people or what it calls its own people relentlessly since 1947... The colonial state whether it was the British state in India or whether it's the Indian state in Kashmir or Nagaland or in Chhattisgarh, they are in the business of creating elites to manage their occupations, so you have to know your enemy and you have to be able to respond in ways where you're tactical..."

Kashmiri separatist Syed Ali Shah Geelani had also attended the conference

and, as per the organisers' pamphlets distributed in JNU, "most resolutely articulated his unequivocal call for Azadi as the only solution acceptable to the struggling people of Kashmir." The pamphlet stated that, "Geelani had shared the stage with representatives from various other struggling nationalities, as well as intellectuals, writers and activists from India." Geelani was arrested on his return; against that, the pamphlet writers commented thus: "Like in Kashmir too, Indian state rather than taking any action against the murderers in uniform has continued to brutally murder more and more non-violent protestors... But the writing is loud and clear on the walls of Kashmir. Slogans like 'Go India Go Back', 'hum kya chahte? Azadi' are echoing in the streets of the valley every single day! The deaf Indian state might try to silence it, its corporate media lackeys might try to ignore the reality but this is what the millions of Kashmiris are saying in unison. No might of the colonising Indian state can dominate this unflinching aspiration of the Kashmiri masses. It is the united fight of other oppressed nationalities along with the oppressed masses in India which is going to defeat this fascist brahminical state and its oppression..." Interestingly, it was these same chants that were shouted in JNU on February 9 this year. The convention report reveals its virulently anti-India character. It say:

"The speakers who were represented from various struggling nationalities as well as intellectuals, writers and activists from India, most resolutely articulated the unequivocal call for Azadi as the only solution acceptable to the struggling people of Kashmir. After the convention, Chidambaram-led fascist Indian ruling classes were hand in gloves to register a case against the speakers." "The convention read out loud and clear for Indians in India, what is written on the walls of Kashmir 'Go India, Go Back!' no amount of repression can deny just demand of Kashmiris for Azadi, fighting masses of India for their land, livelihood and dignity. Colonising, Brahminical, fascist Indian state will be destroyed."

Ms Roy and others speakers in this conference essentially called the Indian state/Government a colonial and oppressive entity that was waging war against its people and called on the people to look upon India as their enemy. And yet when the BJP demanded that action be initiated against Ms Roy, a public statement was released demanding as is the habit the upholding of "free speech and expression." This statement was signed, among others, by the following professors of JNU: Nivedita Menon, Ranjani Mazumdar, Kumkum Roy, Anuradha Chenoy and Kamal Mitra Chenoy. By appending their signature

in defence of Ms Roy in a statement which justified her views on India, these professors endorsed the argument that the Indian state was an aggressor state waging war against its people. Ironically, as professors of a Central University, they were themselves life-long beneficiaries of the Indian state.

Professor Kamal Mitra Chenoy has been at the forefront of the recent JNU episode, defending the students' 'right' to raise anti-India slogans. He is an old hand with a stake in every pie of separatism that is linked to India and was active in the ISI-supported Ghulam Nabi Fai network. In July 2006, he had participated in the Sixth International Kashmir Peace Conference in Washington, DC, which had dubious sub-themes like, "Is Self-Governance a means towards Self-Determination?", "Demilitarisation: First step toward setting a stage for settlement" and "Kashmir: Human Rights Dimension".

In May 2011, a two day international conference on Kashmir was held in Muzzafarabad in Pakistan-occupied Kashmir which was attended, among others, by professors Kamal Mitra Chenoy and Anuradha Chenoy and also journalist and Left activist Seema Mustafa. Prof Kamal Mitra Chenoy's statement at this conference was contrary to the stated position of the Indian Government and Parliament. The conference was also attended by Fai, then executive director of the Kashmiri American Council, an ISI front in the US. Fai spoke in favour of self-determination of the Kashmiri people. Waxing eloquent in that conference before his Pakistani and separatists hosts, professor Kamal Mitra Chenoy, said that "repealing black laws, ensuring the basic fundamental rights of Kashmiri people and engaging political as well as civil society at different levels can really help to move bring peace in the region".

He denounced the "draconian laws" prevalent in the State and said that Kashmir is an "international problem". He also said that, "Azadi is the demand of the people of Jammu & Kashmir and what shape does it take is a big question".

The list of collusion and subversion is a long one, a long litany of betrayal and insidious action against the existence and narrative of India. The unkindest part of it all is the reality of teachers preaching secessionism and separatism, and singing the tunes of the patrons of terrorism and subversion. In his report on Indian universities, philosopher, educationist and statesman Sarvepalli Radhakrishnan had noted, that, "If India is to confront the confusion of our time, she must turn for guidance, not to those who are lost in the mere exigencies of the passing hour, but to her men of letters, and men of science, to her poets

and artists, to her discoverors and inventors. These intellectual pioneers of civilisation are to be found and trained in the universities, which are the sanctuaries of the inner life of the nation."

These collaborationists in the agenda of breaking India, operating within the hallowed precincts of a university, are definitely not the "intellectual pioneers of civilisation" but are rather the debasers of civilisation, who, through their profanity, are constantly defiling these "sanctuaries of the inner life of the nation".

Freedom does not mean compromising responsibility to nation: RSS

Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) has flayed compromising the responsibility to the nation in the name of freedom of expression. RSS Akhil Bharatiya Sah-Prachar Pramukh J.Nandakumar said in a statement that compromising the responsibility to the country in the name of freedom of expression was a meaningless act. 'Bharat has always given importance to freedom of expression and artistic expression. But the patriotic citizens of the country could never allow anyone to surrender the unity and sovereignty of the country,'' He said there is no doubt that Jawaharlal Nehru University (JNU) is a prestigious institution. But it has been converted into a shelter of fundamentalists, left extremists, terrorists and casteist forces in the recent past, he alleged. He called for united stand united against such forces.

Courtsy: Organiser

KANHAIYA KUMAR & AZADI

• **Aman Lekhi**

Courtsy: Aman Lekhi's Blog

How long can one remain a "student"? How good is an institution if a student cannot pass out of it? And who is qualified to lecture on life or the country? I was curious to know about the student Kanhaiya Kumar. It seems, according to his Wikipedia page, he finished school in 2002 which should make him atleast 31 years old today. The Page mentions that thereafter "he moved to Patna and joined College of Commerce" without mentioning the year of joining or completion. I came across an article in Telegraph (February, 19,2016) which mentioned that he was an undergraduate student at the college between 2003-2007. I will ignore the gap of one year between finishing school and commencing the undergraduate course and also its completion taking a year longer but his Wikipedia Page says "he moved to Delhi and joined JNU" without mentioning the year he so did but mentions "he became President in 2015".

It has been nine years since he finished graduation (which was after a break of a year and took a year longer than usual) and he is nowhere near completing his PhD. It was in the eight year of his undertaking the PhD course - three years more than the maximum it should take to complete the PhD - that he became the President of the Student Union perhaps because he found studying pointless by then. The PhD itself, incidentally, is not Centre for Political Studies (which deals with subjects of multiculturalism, federalism and social justice) but "African Studies"! The JNU site of Centre for African Studies says that it provides funding support to faculty for field visits to Africa and supports academic activities like research seminars, and publications. It is not known whether Kanhaiya ever visited Africa or he organised any seminars on African studies but the Delhi High Court Order releasing him on interim bail records that he resented cancellation of a program "Against the judicial killing of Afzal Guru & Maqbool Bhatt' the permission for which was applied by Umar Khalid on the proforma (believe it or not) for 'Poetry Reading - The Country Without A Post Office.'

In his speech on release Kanhaiya is reported to have said, "Let me just say it is not easy to get admission in JNU neither it is easy to silence those in JNU." What he omitted to mention was the fact those admitted do not find it easy to

leave the institute much like Kanhaiya who stays there in his ninth year, remaining a student in his thirty first year trying to complete a course with which he has shown no affinity (despite the "difficulty" in getting admission) even four years beyond the maximum time taken to complete it. Bravado in a place of comfort (he chooses not to leave JNU) without proven accomplishment in the discipline undertaken (he has proven incapacity in African Studies) and an abject failure to make an honest living (not every Indian enjoys the luxury of an indefinite education and most need to settle soon into a livelihood to sustain themselves) shows only an empty pursuit of ambition and a selfish misuse of position making not only a mockery of education but entailing in addition the lampooning of livelihood something which will not behove any responsible individual.

Kanhaiya is least competent to lecture anyone on life or country. It is not the best way to live life if one inexplicably remains a "student" till 31. And such a person definitely does not live like an ordinary honest Indian (education for whom is an opportunity which is respected) whose cause he claims to espouse. It is easy to advocate action. It is deliberation that is difficult. Before lecturing us did he deliberate on his condition - a thirty one year old student! And while mentioning the targeting of JNU did he wonder why so prestigious a university could not make him complete his course in time? And then ofcourse the stirring love for country. Azadi "within" the country is battle cry. Who but Kanhaiya will know about it. It is the freedom to remain a student for ever, the freedom never to leave the University, the freedom not to complete courses but spend time making speeches, the freedom never to work, the freedom to merely speak, the freedom to be a demagogue or a soap-box orator, the freedom to rouse emotions and stir hysteria and the freedom to denounce punishments lawfully administered as "judicial killings" under the guise of "poetry reading", the freedom to replace Kanhaiyaism for all other isms!

Kanhaiya is definitely not the role model for the bearer of national standards and in fact epitomises the very wrongs in the system which are stymieing it.

Published in Maili today

Anti-India incident in JNU part of larger conspiracy

• **Dr. Shiv Shakti Bakshi**

In 2004 a resolution was introduced in JNU Students' Union (JNUSU) council meeting seeking to condemn China for continuing to show Arunachal Pradesh as part of its territory. The resolution was defeated with all the SFI, AISF and AISA council members voting against the resolution. Similarly a resolution declaring Jammu & Kashmir integral part of India was introduced and defeated in the first council meeting after JNUSU election in 2015. The JNUSU President Kanhaiya Kumar presided over the meeting and SFI, AISF and AISA councilors came together to defeat the resolution. The claim that they always stood for unity and integrity of the country appears a new revelation for those aware of the communist political discourse on the campus. These are not isolated incidents but a deep study of the resolutions passed and defeated in the left dominated JNUSU council will reveal the manner in which the left students groups have time and again made their ideological positions clear on the campus.

In JNU although the communists are a divided lot but they unite on electoral strategies to somehow continue their collective hold over JNUSU. While the radical elements seek to hijack the communist agenda in the campus, the students wings of CPI and CPM struggle to gain ideological legitimacy from them. On the one hand while they unite against ABVP, their internal debates also sometime become sharp as they compete to prove their claim to be the 'real left'. This competitive radicalism sees one outfit demanding removal of AFPSA in Jammu & Kashmir, then other comes out demanding 'right to self determination' of Kashmiris. Not to be outdone the other outfit organizes programmes for 'Azadi of Kashmir' through arms wherein all the outfits join together to be seen in support of these kinds of radical initiatives. It has led to radicalization of ideological positions in JNU with SFI, AISF, AISA, DSU etc. attempting to outdo each other in their claim for the space within the 'real left'.

The amalgamation of radical left and jihadi elements finds favour within the understanding of vote-bank politics in the campus. It has become a

dangerous mixture of extreme ideologies reinforcing each others' ideological positions. It gets manifested in the celebration of killings of security forces personnel in Dantewada and in making heroes out of Afzal Guru and Maqbool Bhatt.

Those who are claiming that the JNUSU president was not involved should know that it's not possible for the outsiders to enter the campus without the patronage and protection of the insiders. While the so called 'cultural evening' had open support of the Kanhaiya Kumar led JNUSU, he never filed any complaint before the JNU authorities or police against the presence of masked men in the campus or against anti-India and pro-Pakistan sloganeering in the programme. He was seen supporting them and encouraging them. Some video footages have also shown him shouting slogans with one of the main accused Omar Khalid. In fact the incident in JNU cannot be seen in isolation. It is not that a handful of students had come out and raised

some slogans but such incidents are part of larger design to weaken India and mislead its younger generation. Anti-India forces are trying to create such situation in different campuses in the country. So by conducting proper investigation this conspiracy needs to be fully exposed before the nation. It's unacceptable for the people that anti-India, pro-Pakistan slogans are raised in connivance with some JNUSU office bearers and the masked people shouting slogans are given not only protection but encouraged and patronized by them. Enough is enough, such incidents should be condemned in no uncertain terms.

The people across nation are agitated and anguished. The political parties and JNU community should understand this national outrage. The attempts to somehow divert the issue by questioning the police investigation will further tarnish the image of JNU in people's mind. It is time for the communist parties to rethink their position as they cannot escape from the overall responsibility of the kind of atmosphere prevailing in JNU. Such atmosphere of competitive radicalism has emboldened such subversive elements who are seeking to make campuses like JNU across the country their recruiting ground. The manner in which a section of JNU is trying to subvert the entire issue will further isolate them in the eyes of people and fuel the anger across the country. Rahul Gandhi not being able to understand this national mood in extending support to JNU incident has created very uncomfortable situation for the Congress. No one will disagree that the country should stand united on the question of national interest and sooner this understanding dawns on all the political parties is better.

Published In DailyPioneer

THE ARRIVAL OF A NEW PROLETARIAN MESSIAH

• **Sandhya Jain**

The most dangerous and unheeded aspect of the recent controversies rocking universities across the country is the communalisation of nationalism. The radical Leftist elements, mostly deracinated Hindus clamouring for freedom to lionise convicted seditionists and terrorists (even if that itself is not sedition) have overlooked the fact that each idol being juxtaposed against the nation hails from one community. In the nationwide ferment over India's sovereignty and territorial integrity, triggered by this dispute, there is a danger that an entire community could be tarnished. Saner elements in the Muslim community have either not realised this or perhaps hope that this aspect of the radicalism backed by the Congress, the Communist Party of India, and the Communist Party of India(Marxist), will escape the notice of the general public. Perhaps they feel that a discrete silence is the wiser course to adopt at a time when the international environment is vitiated by terrorism in large parts of the globe, which has been further complicated by unwarranted US and North Atlantic Treaty Organisation-backed interference in some Muslim countries.

It is true that some of the State-funded 'inquilabis' have invoked solidarity between Muslims and Scheduled Castes (they use the missionary term 'Dalit' and call themselves Ambedkarites), but the fact remains that men like Bhimrao Ambedkar helped frame the Constitution of free India. Hardly any eminent Scheduled Caste personality has attacked the unity of India; this group has always sought accommodation and honour within the constitutional framework. Hence, there is no dodging the fact that the campus radicalism at Hyderabad University and Jawaharlal Nehru University (with echoes in Jadavpur University), has been exclusively about supporting those who have attacked the sovereignty and territorial integrity of India. Maqbool Bhat, co-founder of the Jammu Kashmir Liberation Front, was convicted and sentenced to death for an act of terror. Yakub Memon was convicted and executed for involvement in the 1993 Mumbai serial blasts in which nearly 166 persons died and many more were injured. Afzal Guru was convicted and hung for

his role in the terrorist attack on the Indian Parliament in 2001. So when JNU students' union president Kanhaiya Kumar, granted conditional bail with some strictures by the Delhi High Court, tries to be cute and says that Afzal Guru is not his hero, but Rohith Vemula is, none can miss the fact that the raging controversy around Vemula pertained to his group's role in idolising Yakub Memon.

Sadly, Vemula did not spell out the reasons for his disillusionment with the varsity's Ambedkar Students Association, which doubtless played a role in his tragic suicide. His sharp observations about some political parties and leaders have since come to light.

What is pertinent here is that out of the trio of Bhat, Memon and Guru, two were associated with violent conspiracies to separate Kashmir from India, but Memon was associated with a wider communal polarisation that resists giving the country's civilisational ethos its due eminence as the nation's foundational ethos. Kanhaiya Kumar, who was admittedly present at Umar Khalid's illegal function to protest the "Indian occupation" of Kashmir and the "judicial killing" of Afzal Guru and Maqbool Bhat on the JNU campus, seems to have switched effortlessly to a larger and potentially more lethal platform of instigating communal polarisation in the country. Clearly, he is being mentored by some very astute persons.

Now, as the adept rhetorician travels to help the beleaguered communist parties in the elections in West Bengal and Kerala, the Election Commission would do well to monitor his speeches. Journalists who have been swooning over Kumar's speech after being released on bail - actually just a string of one-liners bound in an overarching narrative of hostility towards the Government and Prime Minister Narendra Modi - must already be feeling the deflation that follows a hangover as the Congress, angered at the realisation that the 'cult of Kanhaiya Kumar' has pushed Congress vice president Rahul Gandhi's popular rankings further down, will ensure that he remains a communist mascot. This is bound to affect the internal coherence of current attempts at Opposition unity. It would be in order to note that while granting interim bail to Kanhaiya Kumar in the sedition case against him, Justice Pratibha Rani observed that JNU students, faculty members and authorities need to explain why peace eludes this prestigious institution. The February 9 function, touted as a 'poetry reading', was revealed by posters to be something else, which compelled the authorities to withdraw permission. Interestingly, this permission was sought on February 8, the same day former Delhi University

lecturer SAR Geelani booked the Press Club of India premises for his anti-India celebration of February 10. It seems difficult to believe that this is a coincidence. Citing some of the objectionable slogans raised at JNU, the presence of persons with faces covered, and Kanhaiya Kumar's claim to enjoy freedom of speech and expression under the Constitution, the judge observed that freedom is subject to reasonable restrictions and the student community needs to introspect about the posters of Afzal Guru and Maqbool Bhatt, which are visible in photographs of the incident. In a thinly veiled reprimand, she said the JNU faculty has to play a role in guiding students to the right path. In advice that will rankle long after this event is over and done, she said the faculty must discern the reason behind the anti-national views in the minds of students and find remedial measures so that such an incident does not recur. In a stern indictment of the university and its faculty, the judgment asserts that the thoughts reflected in the slogans raised by some of the students of JNU who organised and participated in the February 9 programme, cannot claim protection under the fundamental right to freedom of speech and expression. On the contrary, the judge said, "I consider this as a kind of infection from which such students are suffering which needs to be controlled /cured before it becomes an epidemic".

Forced to give an undertaking that he would not participate actively or passively in any anti-national activity and, as president of JNUSU, would make all efforts to control anti-national activities on the campus, the adroit All India Students Federation activist has reinvented his nationalism as a thinly-veiled mockery of Indian democracy and the freedom of expression. It is this derisive scorn of the court, the Constitution, and the nation that has won such rapturous applause from the armies of fellow travellers that emerged from every nook and cranny to anoint the new proletarian messiah.

Published In DailyPioneer

KANHAIYA KUMAR: THE HERO FOR NO REASON

• **Rajesh Singh**

A few days in prison can miraculously change a person's conduct. India's rising star on the ideological and political firmament, the one and only Kanhaiya Kumar, is now singing a patriotic tune that should gladden Manoj Kumar's heart. Out on bail for a period of six months after spending 20 days behind bars on a variety of charges including sedition, the Jawaharlal Nehru University Students Union president's fresh statements have been hailed as "amazing" and "brilliant" by his political admirers. On various platforms since his release, he claimed that his ideal was Rohith Vemula (why?) and not Afzal Guru; and that the azadi he is demanding is freedom from poverty, from hunger, from inequality.

Bihar Chief Minister Nitish Kumar could not contain his excitement, claiming that "the coming forward of such a talented student and youth will strengthen the roots of democracy in our country". He leaves unexplained how the roots of democracy can be strengthened when the likes of Kanhaiya Kumar remain mute to break-India campaigns. Mr Nitish Kumar's colleague in the Janata Dal (United), Mr Sharad Yadav, was moved enough to declare that the country needed "more Kanhaiya Kumars so that the people could live and sleep peacefully". Live and sleep peacefully, when university students and others plot the destruction of India! Not to be outdone, Delhi Chief Minister Arvind Kejriwal chipped in with his "amazing clarity of thought expressed wonderfully" endorsement, accompanied by a warning to Prime Minister Narendra Modi to not "mess with students". In other words, the Prime Minister and the Government must remain silent spectators (like their predecessors) while sections of the student community go on a verbal rampage - not just against the incumbent regime but also institutions that symbolise democratic authority - Parliament, judiciary, police etc.

Just in case you thought all the gushes has to do with Kanhaiya Kumar's patriotism, a correction is in order. The student leader is the toast of the Opposition especially because he used his homecoming to launch a tirade against the Prime Minister and the Bharatiya Janata Party. Patriotic sentiment

doesn't excite this crowd of opposition leaders; in fact, it embarrasses them. What has had the opposition leaders cheering like possessed fans at a rock concert is Kanhaiya's diatribe against the Prime Minister. Two of the student activist's gems are as follows: "Modiji only says mann ki baat but doesn't listen to it"; and, "We have some people like that (selling magic) in our country, who say black money will come back; sabka saath sabka vikas".

After all this, certain Left leaders have reportedly decided to use him for electoral campaigning. Kanhaiya Kumar claims he is not into politics. We will soon know. He has shown the veteran politician's knack of milking situations. Meanwhile, he is being felicitated as if he has been discharged of all allegations, and in a manner reminiscent of the adoration freedom-fighters received from the public on their release from colonial prisons.

Kanhaiya Kumar has no option but to adhere to the undertaking he has given to the Delhi High Court, that he will not participate actively or passively in any activity that may be termed as anti-national. On his part, the student leader maintains he is not anti-national. The irony appears lost on his admirers. Why would the court ordinarily ask a law-abiding citizen to provide an undertaking that he will not engage in anti-India actions, as part of the bail proceeding? It would do so only if it has reason to believe that the person concerned may do what the court considers wrong. The judge had even gone to the extent of quoting a patriotic song from a Manoj Kumar film and observing that anti-nationalism was an "infection" that had to be addressed. Kanhaiya Kumar has discovered the virtue of patriotism after his time in jail. He had not found it necessary to condemn and confront the anti-India and pro-terrorist sloganeering crowd in the JNU campus in the second week of last month. If he had wanted, he, together with the other students of the university, could have easily done that. He didn't, just as he had not opposed the 'cultural meeting' that was organised with the deliberate aim of demeaning the country and its sovereignty and integrity, and in which calls for India's disintegration were raised.

Kanhaiya Kumar today talks grandly of the difference between "deshdroh" (anti-nation) and "rajdroh" (anti-Government), but since he remained silent (even complicit, according to his detractors and Delhi Police) over calls for India's dismemberment and terrorist Afzal Guru's 'martyrdom', he must educate us on whether that silence had to do with deshdroh or rajdroh. Incidentally, Kanhaiya Kumar's (after-thought) sanitisedazadi call is interesting, since he now wants freedom 'within' India and not 'from' India -

and from a host of socio-economic ills. The student leader is now craftily projecting for himself an image of an activist out to provide succor to the toiling millions struggling for two meals a days or decent clothing. If he is sincere, he should train his guns on the Congress which ruled the country the longest and ruined it the most. He must turn around and demand that his comrades explain why they ground West Bengal's economic development to dust in the more than three decades of uninterrupted reign. If he is a progressive, he must seek answers from both the Congress and the Left parties on why they have continued resorting to brazen appeasement policies based on religious identity (even as they condemn the BJP and the Rashtriya Swayamsevak Sangh for precisely that) and not on economic considerations.

On matters of ideology, he and his ilk have the memory of Gujarat 2002; how is it that they have forgotten the 1984 Sikh massacre, or the various acts of violence involving the Left cadre in Kerala and West Bengal over decades? Kanhaiya Kumar may want to reflect on the observation by legendary businessman and builder of the iconic McDonald's, Raymond Albert 'Ray' Kroc: "The quality of leaders is reflected in the standards they set for themselves." The JNU scholar might not be Kroc's ideological fellow-traveller, but as a student leader (and a soon-to-be political leader), he can ponder over Kroc's observation without being infected by the 'capitalist' virus. Did he set the right standard by his silence over anti-India campaigns? Reports suggest that he had even opposed the cancellation of permission by university authorities to the so-called cultural event. Kanhaiya Kumar's loud proclamation of patriotism has nothing to do with a change of heart; it's a change of tactic after sensing hostile public opinion and the High Court's mood.

Published In DailyPioneer

JNU DRAMATISTS MIX UP RAJDROH WITH DESHDROH

• **Swapan Dasgupa**

Now that the Jawaharlal Nehru University and its voluble supporters across India and abroad have had their liberation moment and azadi has acquired an additional meaning, the hope is that Kanhaiya Kumar can embark on his campaigns in West Bengal and Kerala, leaving normal people to get on with their lives. That the TV-watching classes have had an overdose of excitement and moments of indignation seems undeniable. Since there is great media percentage in posturing and insolence, the past few weeks have witnessed the unreal graduation of a students' union functionary from excitable slogan shouting to becoming a political philosopher attracting the wide-eyed appreciation of gushing journalists. Apart from indicating how little it takes to achieve exalted status among an increasingly desperate liberal fraternity, the JNU turbulence has had other unintended consequences.

First, there is little doubt that and despite the Judge's admonishment of Kanhaiya while granting bail - the bar on what constitutes acceptable discourse. To many people, the new demonology around nationalism is a refreshing bout of fresh air. Despite their professed outrage over the so-called shrinking space for dissent, the azadi controversy in JNU and elsewhere has definitely re-defined the liberal consensus. It has brought it closer to the political permissiveness of the European and North American fringe. Whether this will also result in a profound re-definition of what constitutes the mainstream is still unknown. But with Kanhaiya declaring that the struggle will end when the Narendra Modi Government is toppled and his adoring fan club in the media nodding in agreement, the battle between the acceptable and the non-acceptable has acquired a new and potentially interesting dimension. Having taken sharply different positions, both sides have a lot at stake. If the Left-liberal fraternity doesn't succeed in shifting the consensus in a more libertarian direction, the media-created euphoria over Kanhaiya's 'victory' will be a pyrrhic one. There could be quite a reaction against the lifestyle features of those seeking azadi. The revolt against the US involvement in the Vietnam War, for example, had a knock-on effect among youth all over the West. It also produced a

significant change in social attitudes and even tastes. However, its effect on electoral politics was either negligible or, at times, counter-productive. If the sense of common decencies remain where it was before the sedition charges were levelled, it is entirely possible that those siding with the establishment will have the upper hand once the initial excitement subsides.

Secondly, there is the troubling question of the sudden respectability conferred on those who seek civil liberties without restraint. Kanhaiya's slogans appear to draw an interesting but valid distinction between deshdrohi and rajdrohi. In the process, they appear to have merged the opposition to the Modi sarkar with the assault on the State. Earlier, opposing Modi (or any elected Government) was deemed a democratic right. But this opposition to a political face of India has now been extended to an implicit endorsement of those taking up arms against the State. This crucial shift is good news for both separatists and those seeking the armed overthrow of the present system of governing India. There is no real meeting ground between the proponents of Constitutional patriotism and those who seek the overthrow of the Constitution through the breakup of the Indian Union. Yet, both have come under the same umbrella, at least momentarily. If the alliance persists, it will be ominous and a development of momentous significance. Finally, the JNU events also indicated a new turn. Earlier, the Left-liberal establishment had been remarkably inept in evolving its own imaginative idiom of political theatre. The BJP in particular had mastered the art right from the time the Ram Janmabhoomi movement took a political turn in 1988-89. For all its angularities, and thanks in no small measure to the sustained media publicity, Kanhaiya seems to have put some life into a moribund Left. This is a great achievement and the other side has to think big and respond with a vibrant counter-narrative that goes beyond chanting Bharat Mata ki Jai and Vande Mataram. At the same time, it is an open question as to whether the JNU drama was aimed at merely raising the spirits of those whose obsessive hatred of Modi is their self-identity. Or did it reach out to the non-initiated?

For the moment there are no definite answers to these questions. The events in JNU offer interesting possibilities for both sides of the great divide.

Published In Organiser

WHY JNU IS LIKE THIS?JUST TO RECOUNT

• **Sandip Mahapatra**

The incident of February 9, 2016 in JNU, for all those who have been in the campus or know about the varsity was nothing new as such incidences have taken place with impunity in the past. The Hawala episode came to limelight after a terrorist Sahabuddhin Ghori was arrested from the campus in the mid nineties. In 1996, the then AISA (student wing of CPI (ML) invited terrorists from the valley to address students in JNU only to be thwarted by nationalist in the campus. In the year 2000, two army men were brutally beaten up during a friendship Mushaira organised by one of the left student organisation because they protested anti-Indian Mushaira being rendered by the participants. In 2009, when more than 70 paramilitary forces were killed in Dantewada, Chhattisgarh, there was celebration in the campus and the Indian flag was burnt by the activist of AISA and other Naxal groups. Few years back a student of JNU was arrested for having links with Naxals, who held many parts of the country to hostage.

These are just a handful of many such instances which have never got the limelight that it deserved. The readers would be surprised to know that no action whatsoever was initiated against all those involved in the incidences mentioned above mostly because they were patronised by vested interest in the campus and also because the media never took these incidences seriously. The recent case also would have met with the same fate had the media not picked up the issue and had it not generated the attention that it deserved. Soon after the police action, the usual chant of freedom of expression being denied, JNU's autonomy under threat rather JNU under threat has filled the air. Leaders of all hues have made a beeline to the campus against the arrest. The irony is CPM who never believed in freedom of expression in Bengal, Kerala and anywhere it could manage to get a whiff of power, including in JNU is now going length to lecture us on this. Congress party that imposed Emergency in the country, came down heavily on any dissent on many occasions during its 60 years of misrule including ban on Satanic Verses, brutalising students during the Nirbhaya incident and Anna movement is lecturing on freedom of expression.

Given that JNU was set up to accommodate the communist it is but natural

that bird of same feather will flock together even at the cost of national unity and integrity. For these political parties its all about scoring brownie points even on this issue where secessionist slogans were raised, where Afzal, Maqbool Bhatt were eulogised as heroes.

The explanation now being given is that the event was organised by a "fringe" left group, the question is who allowed it? Was it a case where one left group giving space to another in the name of left unity or is it a case where the malice runs much deeper and there is more than meets the eyes??? he question is whether the teaching community, many of whom have got appointed because of their ideological leanings and many of whom were active members of the various students grouping of CPI, CP(M), CPIL(ML) during their student days and later on as card members of the main party have provided a safe sanctuary to interests inimical to the cause of the nation?. One would agree with the larger picture that JNU needs to be saved but the big question is from whom??? Is JNU to be saved from the clutches of those who have always believed in a particular kind of worldview and derided, demeaned and ridiculed any other world view and are well entrenched in various positions in the varsity for years together?? Is to be saved from the clutches of those who have used the Varsity to propagate their idea of India which is not a single Nation but conglomerate of various nationalities????

Is it to be saved from those vested interest who have institutionalised a system of appointment to the faculty and other position where the adage is "you favour my student and I will yours"???? Unless we have answers and clear about what "Save JNU" mean, we will do a great disservice to the Varsity and to the nation. The bottom line is we as former students of JNU take pride in what we have got from the varsity and hence we do expect that the institutions do not become a launch pad for anti national and secessionist activities.

“Communists condemn the constitution because it is based upon parliamentary democracy.”

Dr. Baba Saheb Ambedkar
(Speech of constituent assembly, 25 Nov- 1949)

Who is Umar Khalid?

One person who was defending the JNU incident is Umar Khalid. He hails from Bihar and is a leader of Democratic Student's Union (DSU) an extreme Left group. Born in a Muslim family, he identifies himself as an atheist. As PhD student in School of Social Sciences he has been doing field work in Jharkhand. He is considered as the mastermind behind the programme commemorating terrorists like Afzal, Maqbool Bhatt in the name of cultural evening. Umar is believed to be a sympathiser of the Jaish-e-Muhammad and allegedly visited Pakistan as well.

His phone records suggest that from February 3 to February 9, he made around 800 calls out of which maximum calls were directed at the state of J&K. He also received calls from the Gulf Countries and Bangladesh and made calls to 17 different locations in Bharat. Now, he in custody.

Chronology of Events

2 Feb. - Pamphlet in support of Afzal was released

8 Feb. - Posters of a cultural evening organised in support of Afzal on February 9 at Sabarmati Dhaba were pasted on hostel walls

9 Feb - ABVP complained to the administration after which the administration cancelled the permission; Organises gathered forcefully at 5 pm followed by a procession around 6:30 pm with anti-national sloganeering such as 'Bharat ke 10 tukde honge, Inshaa Allaha, Inshaa Allaha', 'Kashmir ki aajadi tak, Bharat ki barbadi tak Jung Rahegi, Jung Rahegi', 'Afzal tere armano ko, majil tak pahunchayenge, Pakistan Zindabad, Go Back India, Bharat murdabad etc. When ABVP opposed the procession, the activists were beaten up. Many people who participated in the programme were outsiders and JNUSU President Kanhaiya Kumar led the march culminating his speech at the Ganga Dhaba. At late night, ABVP registered a complaint in Vasant Kunj police station

10 Feb - ABVP gave a call for protest demonstration in front of the administrative block demanding suspension of the organisers

11 Feb - ABVP organised the flash mob march with Bharateeya flag in all the school area at 10 am while all the left groups called for the protest against ABVP at administrative block at 2:30 pm

12 Feb - CPI leader addressed the teachers & students; a protest rally was organised. ABVP called the march under the banner of JNU4 Nationalism at 9:30 pm.

13 Feb - Sitaram Yechuri, D Raja, Rahul Gandhi and Anand Sharma etc visited the campus and opposed the detention of JNUSU president; around 6 to 8 pm ABVP displayed black flags to Rahul Gandhi

14 Feb - JNU teachers association called strike; left supported groups made a human chain demanding immediate roll back of the suspension

15 Feb - JNU staff association supported the nationalist approach. ABVP called for a unity march from Ganga Dhaba to Chandrabhaga at 5:30 pm.

Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation

https://web.facebook.com/spmrfoundation

https://twitter.com/spmrfoundation